





—०(—३—) —

मंगलाचरण

उद्धमान् थिया शुद्धथा वर्द्धमान नमाम्यहम् ।

उत्त तार्थमद्यापि यत्प्रमादात्सुखविहम् ॥१॥

स्वरूपादानाननिष्पाद्यात्मनस्तुत्रविधायिनिसद्विधाधिप

— — — — —

—

—

—

—

—

—

—

—

किञ्चिद्भक्त यते ।

अर्थ—प्राप्त भी जिनके प्रमाणसे सर्व प्राणियोंक निय सुखावह  
ताय (धर्म शासन) विद्यामान है उसे शुद्ध निष्कर्षक मात्र सदमीसे  
मुशामिल श्री नदागौर भगवान् को मैं नमस्कार करता हू ।

स्वरूप के अंग और पररूप के त्याग में उत्पन्न, आत्म वस्तु के स्वरूप  
को प्राप्ति कराने वाले सम्यग्ज्ञान से विपरीत जा अनादिपरम्परा से चले आये

यद्यपि चिदचिदन्तरप्रदर्शनापलब्धग्रभायाया दृष्टेरिषय य  
 सत्त्व विना न क्षणमप्यास्ते कश्चिदात्मा ततश्चैतस्याप्यम-  
 नदृष्टिविषयवियोगाभावजेसुखास्तित्तामजयत्तम् तथापि  
 दर्शनमोहादयानुदयोपलब्धकुत्सितसमोचानसञ्ज्ञया दृष्ट्या  
 जीवलोकोऽय दुःखसुखभाग्भवति ।

अतो निर्विसवादमेतत्-दृष्टिः सुखम् दृष्टिर्दुःखम् दृष्टिः  
 सपद्दृष्टि विषद्दृष्टि धर्मो दृष्टिधनम् दृष्टिर्दारिद्र्यम् दृष्टिः पुण्य  
 दृष्टिः पापमित्यादि बहुविधोपाधिविशिष्टत्वेन विचित्रत्वात्तस्या ।  
 यद्यपि ममस्त्यागुन्यार्चिस्ततिद्राहटदह्यमानोऽय ममस्तो

मिथ्याज्ञान के समर्ग में उत्पन्न विषय भासना में दूषण हो रही है ना मा  
 चिन्ता ऐसे चारा गतिया के जीरा के दुःख निवारण करने में, आनुज  
 तारो को चोचन वाली विषय वासना का अंतरङ्ग कारणभूत आविशा  
 (अज्ञान) के नाश करने में पक्ष मन्त्रि ही निश्चय में समर्थ है । मसकिय  
 ऐसी दृष्टि को लक्ष्य कर उसके पापण न निमित्त कुछ कहने की प्रयत्न  
 करता हूँ ।

यद्यपि चेतन और अचेतन के प्रभाव से आविभूत हुआ है प्रभाव  
 नसका मसी दृष्टि के विषयभूत क्षायक भाव के सत्त्व के बिना क्षण भर  
 भी कौड़ आत्मा नहीं रहता है और मस ही कारण आज्ञान वाली  
 दृष्टि के विषयभूत सत्त्व के वियोग के अभाव से उत्पन्न होने वाले, सुख  
 के अस्तित्व में रुशय न रहना चाहिये तो भी मशन माह के उदय और  
 अनुदय में प्रमत्त हो आर अस्त्य मज्ञा में मसी दृष्टि का । यह  
 जीव लोक दुःख और सुख का पात्र होता है ।

दृष्टि

जल्लोक सुखार्थी तथापि मत्पक्षमरूपोपायानभिज्ञो निविक्तप-  
क्षवद्वयमुत्थमाम्यसुखारतास्वादविपरीतात्मभिन्नपरात्म—  
अभ्रातिमूलरूपरागाद्व्यामलिप्सुर्दुःखरूपोपायानविन्दन् देवाधो-  
नमान्तदुरन्तविषयसनपरिणाममेव सुख मन्यमानोऽपि निश्चर-  
सुखनायकमद्दृष्टिपिरहितत्वेन परार्थित्वात्तदव्ययशर्मानर्हो  
भवति ।

आत्मार्थी त्यात्मानात्मसकलवस्तुयद्योत्प्यायमममममम  
त्वेन निहतमोहमूलपरातुलोमप्रतिलामपरिणमनाद्वाव्यर्ह्य

इसलिए यह सब विसंग्रहित है कि दृष्टि ही सुख है, दृष्टि ही  
दुःख है, दृष्टि ही मर्त्य है, दृष्टि ही विपत्ति है, दृष्टि ही यम है, दृष्टि ही  
अधम है, दृष्टि ही धन है, दृष्टि ही दरिद्रता है, दृष्टि ही पुण्य है और  
दृष्टि ही पाप है । क्योंकि नानाप्रकार की उपाधियों में सहित हो  
जान में हाथ नानाप्रकार की होता है ।

तथापि अतुलना रूप अग्निकिरण समूहों में रहने जलना  
हुआ यह गगन में समार सुख चाहता है, तो भी सच्चे सुख के स्वरूप  
और साधन में अपरिचित, विवक्षित त्यागसाधना में लक्ष्य  
समनारूपी अमृतक अभूतपूर्व त्याग (अनुभूति) में विपरीत, निष्काम  
में भिन्न परमार्थों में पात्र लान वाली आत्मबुद्धि का भ्रम है मूल जिसमें  
ऐसी परमार्थों की प्राप्तिवा इच्छुक, दुःखक स्वरूप और वारणोंको न  
लानना हुआ कर्माधीन, तथा दुःख ही है परिणाम चिन्ता ऐसे अस्थिर  
विषयोंके सेवन की प्रवृत्ति को ही

विषादाधिभस्यबुद्धित्वात् आत्मवस्तुत्यरीतभा ज्ञानदशन  
परिणतिमेयम् नाहुलत्पलक्षणं गुरुय दितमनुसरन्नयमुय  
भागवति । अतस्त्वत्र रति-

मुपेहि यत्तुष्टौ त्रैलोक्यमभ्यन्तरत्तमिदं नि मारमयभामते ।  
नि मारावभामतन्तद्विषयैयमिलापा निता, तद्विपत्तौ च  
भावुताः सकलबलेश योनिविकल्पनालानुद्धूतेः परमोपेक्षाजन्या-  
मरनागनरेन्द्रानुपलभ्यमानपरमानन्दमयमाम्यमानामृतममाभ्या-  
दयतः संसारचारापा-

सुख मानता हुआ विनाश रहित सुख को सिद्ध करवाती समीचीन  
दृष्टिसे वचित हाथके का गुण परको चाहने वाला होनेसे अनन्त सुख  
को प्राप्त करनेमें असमर्थ है ।

परन्तु आत्मारथी आत्मा तो निजात्मा और अपनेमें समस्त  
परपदायकी यथार्थ वस्तुस्थितिक ज्ञानसे सम्पन्न होनेसे कारण,  
मोक्षणीय जनित परपन्था विषयक अनकूल तथा प्रतिकूल परिणामसे  
रक्षित होने वाले हय विषादात्मक परिणति व रक्षामोक्षन का बुद्धि-  
नष्ट होजाने से आत्मोद्भूत मोहरहित ज्ञानदशन से शुद्ध पारणमन्दुक्त  
अनाहुलता स्वरूप सुख ही

सच्चा सुख है हित है ऐसा मानता व अनुसरण करता हुआ अक्षय  
अनन्त सुख को अविचारी होता है । इस लिये 'आमन्' उस आसक्ति  
में अनुराग कर जिसमें हास्य जन परतनलाक की सम्पत्ति सम्पत्ति व  
... नि सार प्रतीत होती है । समस्त वस्तु ज्ञान व माररहित ।

स्वपाराधारपारणा भवति । न तु न समस्ति सुखं म भलापाति  
 रोमाये । प्राणिनस्तु निःसुखचिन्तन दारुणरूपमपृणत  
 मद्भवेद्यादयस्तद्भेद्विषयपुष्टि धाननि धत्ते प्राशजित्ति  
 परार्थे मन्यते, रत पय च तत्प्राप्तमायन मित्र तदवाप्ति  
 विरोधश्च शत्रु मत्ता रतो-प्राशादनाशविधौ कयमपि  
 मृत्वा प्रयततेऽद्विनिश तदवाप्युपाय वा चि तय  
 न्त कुर्वन्तरचानतनन्मज्जधौ निमज्जति । एवमनादित  
 प्राणिनः जिलाहारभयमैशुनपरिग्रहमज्ञासम्पन्नशान्दहर्ह-

होन में तत्सम्बन्धों की निवृत्ति होता है । मृत्ता के निवृत्ति होन पर  
 निवृत्त भयनन सम्पूर्ण क्लेशों के सम्पन्नता निवृत्त लाल के पीना नहीं  
 होन में दण्ड नागद नरेद्रा का भी दुलभ प म ज्ञाननना में अत्यन्त  
 परमानन्द मय मभना सन का आभ्यास न ते न मय प्राणा सभार  
 रूपी ग्यार न अवार हु न सागरन पार नान में ज्ञान होत हैं ।

प्राणिक मुख्य आशाद्वारा नान नान पर ही होता है । परन्तु  
 समारी प्राणी चिन्तन न सम्पन्न आत्म परिणति को रक्षा भी न कर  
 हुन मर्ता वेदतीय न दय म ज्ञान दृष्टि को नगिर कर्तुं न करती, जो  
 विषयाभी पुष्टिम हा न करण तथा आत्मा में निवृत्त न ते ते म  
 परपणार्थ में मुख्य मानत हैं और उन दृष्टिय विषयों को नगिर के सहान  
 साधका को मित्र और निराध को शत्रु मान कर उनसे संगो और विदग  
 के बरते म हा किसी भी प्रकार मर कर भा रत दिन न न विद करते  
 हैं तथा न हैं प्राप्त करन क पाया को दिवरात हुन न बरते हुन अन त

परिणति चाञ्छत स्वद्रव्यरपायव्याप्यवशरम्भभावत्वा  
 दर्शयति तदनर्हपरणतो वशादुचीमवत म्यामज्ञानविमुखा  
 ममरति । गुरुद्वाराशास्त्राभ्यासमाधुममागमशांतमुद्रारलोका  
 नादिभि त्तमेनाप्युपायेन यद्येकारमपि स्वपरातरं जानीया  
 तदाय तत प्रभृति विद्वत्तिथिमज्जलेश मन् सर्वापिदामूलाप्य  
 वमानमापोत्पादविधिचापण या मफलोद्यमा भवति ।  
 अतएव भो आत्मन् ! यथाप्रदुर्लभ प्रवित्ससञ्ज्ञितमनुप्यतार्यता  
 सुकृलजिनेन्द्रोपदेशश्रवणात्सर प्राप्य मुधा चीरनं मा यापय

अथार हम संसार सागर में डूबने हैं ।

इस प्रकार चीर अनादि से आहार भय मैथुन और परिमह इन  
 चार सहाया के आधोन होकर उन परदार्थोंकी अपना इच्छाये याग्य  
 परिणमनका चाहते हैं । किन्तु पन्था स्वभावत अपन हो द्रव्य पदार्थों  
 में व्याप्य व्यापकभावसे परिणमा करत हैं अनप्य प्राणी अपनी इच्छा  
 उक्त परिणमाये अभाव में व्याकुल होने हुए आत्मविज्ञानसे विमुख  
 होकर संसारमें परिणमण करते हैं । यदि यह चीर गुरुपदेश, शास्त्राभ्यास,  
 माधुमभा जन, चीररागज्ञान

आदि में अनेक या किसी एक निमित्त में एक बार निजपर के भेद  
 [भेद विज्ञान] का जानने या माहान से उत्पन्न कलशकानाशकर समस्त  
 आपत्ता के मूल अध्ययमानभाव को उत्पन्न करने वाले कर्मा के क्षय कर  
 में सफल प्रयत्न वाला होना है ।

समलप्लेश विनाशनममर्षा स्वकीया सती दृष्टिभाविर्भावय ।  
 किनाल्लोक्रयन्ते बाला परालोपक्रीडामाधन मिञ्चिद्रस्तु  
 स्वकीय मत्वा तदवाप्त्यभावे रोदत विलस्यतश्च, तथैव  
 स्वात्मभिन्नमनात्मानमात्मीय ————— मयगम्य  
 स्वेच्छानुलोमपरिणत्यम वे क्लिरनासि । तद्विमुञ्च  
 परेष्व्वात्मीवाध्यवमानम् समुपदम चात्मानम् । स्वात्मबोध-  
 च्युतिमूला पीडा स्वात्मबोधादव विनश्यति । कथमनन्तशो  
 भुक्त्योज्झितेषु पुद्गलेषु जडेषुनुरप्य जडत्वं विमर्षि ।

इसलिम \* आत्मन् । अतोत्तर दुत्तम 'न' तस, मना, मनुष्य  
 आयक्षेत्र क्षम सुदुर्लभ 'न'म, विनद्वापदग श्रयण न श्रयसर धान कर  
 व्य न नावन को मत गमा और, समस्त केश नाश परन में समथ अपनी  
 समा चीन दृष्टिभा प्रगट कर । अतो श्यानक किसी दूसरे बालक का  
 वस्तु का अपनी मान कर उन न पाकर दुखी  
 होत हुए, रोने हुए वसी प्रकार तू समारी भी अपने से भिन्न पर पदार्थ को  
 अपना मान ऐसे न पाकर वा अपने प्रति वृक्ष असका परिणमन देय कर,  
 दुखी होता है । "सलिय परपरा में आत्मीय बुद्धि को छोड़ तथा निच  
 लक्ष्य म ही रमण कर । निनात्मबोधमे भ्रष्ट होनेमे अज्ञ वतश  
 आत्मज्ञानमे ही दूर दाना है । अत नवार भोग कर छोड़े हुए जड  
 पुद्गलोम अनुराग कर क्या स्वयं जड [अज्ञान] दन्ता है ? हे आत्मन् !  
 परपूर्ण पदार्थोंकी स्वाभाविक परिवृत्ति [परिवर्तन] दानेमे तू उनम म  
 क । को भी अवयथा करने म नहीं बनाने म,



आत्मन् ! तर्थातीना स्वेषु परिणतत्वेन कचिदप्यर्थमयमुपा-  
 पादयितुं भङ्क्तुं रवितुं सयाजयितुमाविर्भावयितुं वा च न  
 शक्नोति केवलं विधिविराक्तमोहदिनिमित्तं। स्वयोगोपायौ  
 विधिवन्धनं निबधनौ विदयापि । न हि कुम्भकारः स्वशरीरा-  
 त्कथमपि कुम्भमुत्पादयितुं शक्तः, केवलं कुम्भनिर्मितिनिमित्ता  
 स्वशरीरचेष्टा विदयात । कृमस्य तु वस्तु वनं कृमोपादानमृ-  
 त्तिहायामेवोपादस्तथैव च पुद्गलानामभिन्नपर्यायाणानानाव्यय-  
 हार्यावस्थापन्नानां तदुपादानपुद्गलेष्वेवावपादं ततस्तन्नामवरय-

तोड़ने में, बचाने में, परस्पर मिलानमें समर्थ नहीं है।  
 केवल कस विषाकमें उत्पन्न मादिक कारण अपने मनस्वी कार्य का  
 परिणतिरूप योग तथा भावपरिवर्तन रूप व्ययागमें कमजोर का  
 कारण बना रहा है। जिस प्रकार कुम्भकार अपने शरीरमें किमा भी नरह  
 घड़े की उत्पत्ति नहीं कर सकता केवल प्रद निमाण में कारण भूत अपने  
 शरीर की चेष्टा करना है, घड़े का उत्पन्न तो वस्तुतः उनकी वश्यात  
 कारणभूत मिट्टीमें ही होता है यही प्रकार—

अनेक रूप में व्यवहार में आने वाली विविध रूप में दर्शन वाली  
 पुद्गला की अनन्त पर्याया की उत्पत्ति स्वयं पुद्गलों में ही होता है। इस  
 लिये तु उनके अपर्ययभावी अपने अनुकूल प्रति कुछ नाना परिणामों दर्श  
 कर स्वयं दुखी मत बना।

अभिभाषक आत्मन् ! जगत के समस्त चराचर पदार्थों का परिण  
 स्वेच्छानुसार होता तो दूर रहा [अर्थात्, उनका जब जिस प्रकार

भाति नानापरिणामनमलास्य नाकुलीमय । भावुक ! आस्ता  
 त परस्परार्थाणां । अत्रानुवर्ति परिणामनम्, कश्चिदस्मप्यर्थ  
 इतरनडात्मा इयमपि परिणामपितु न राक्तस्तस्मात्स्यामिलोप-  
 ण्णमनयोऽर्थप्यव्यापकभावाभावादभिलाषानुलोमनी परपरिण-  
 णात् न भवतीति वस्तु । इतिभयगम्य निर्विकल्पविज्ञानघनपरमा-  
 न दमयशुद्धस्वरूपप्रत्यनाकमन्त्रियावृद्धदुक्लकलेशमृत्ताशुद्धपरि-  
 ण्णनेर्गतामभिनाषा व्यावर्तय । धन्यास्त महाभागा ये  
 प्राक्कृतमुक्तमदकृतसुखभावाच्चरिषयार्थानुपपुज्यानुपभुज्यसा स-  
 र्वान्मदःकषिपानैकनायनपूजाजननीमभिलाषा स्वशुद्धदृव्यवि—

परिचरित हाता हात है यह स्वय ही हाता है । मम उपादान कारण न  
 पन गौ क स्वय क गुण धम हुआ करत है । किमी तरी इन्द्रानुमार  
 जगन ना पारलमनन हान की ता क्या हो क्या ? किन्तु अपन पान क  
 भी पनाय का अरनी इन्द्रानुमार का भी अत्मा परणमन करान में  
 सनय नही है । न जय भयना अभिलाषा और पदार्थ का परिणमन  
 इन हाना मव्याप्य व्यापक भाव न हान स अभिलाषा क अनुमार पर  
 पनाय ना परिणति नही हाता है इस वस्तुस्थिति को जानकर निविकल्प  
 निता न परमान मय शुद्ध आत्मस्वरूप स विपरीत ना मविकल्प तथा  
 आकुलता ही है शरीर निमका एव कतशा का मूल ना अशुद्ध परिणमन  
 मका जीन कारणभूत अभिलाषा को दूर कर ।

य महान् पुरष धन्य है । जा पूर्वोवाजित पुरायादय स सुलभ पचे  
 द्विषा के विषया को भोग कर अथवा विना भाग दूसरी सम्पूर्ण प्राणियों  
 को सतन करना ही जिस के जाना जाय है, ऐसी तृष्णा को पैदा

विष्णुमोहाद्यन्यमानोद्धृत्ययामात्रनिर्विघ्नं यथा तद्विहितम्—  
 पानन्तमुत्तरं च रामभिमन्यमानास्तस्यैव न ताज्जतिं दत्तवत् ।  
 धन्या च सा सती दृष्टियैव सादाच्छिन्नरगापरिगृह्यन्प्रयत्नपरा  
 स्वसमिच्छिन्नममरममहाधनयोगिनो विपिनं शमने राश्वरस्य  
 प्रदानप्रणचतुर्षि शराधनारा रामनुराधयन्ती वर्षागीतातपन-  
 राधाभिमेत्यमित्यमतयगिरिदितोपमगैः क्षुत्त्रियपामादिवेदनाभिर्मना-  
 गपि न खिन्दति । ये स्मिन् भावद्रव्यादितद्वैविध्यममारम  
 वगम्य “प्रक्षालनाद्वि पङ्क य दूरादस्पर्शनं वरम्” इमा नीनिमनु  
 सरन्तो रस्तुतोऽनादित्यक्तमपि भावताऽपि सत्यन्य शिर शिरोय

वाली आशा का, अपन रहस्य में छिप मोह आदि विकारों के अभाव में  
 उत्पन्न महान् निर्विकल्प विद्या रूप अनन्त सुख को पुरान बाँझी भात  
 हुय उम जलानलि ( त्याग करना ) द चुन है ।

यह समीचीन - यह भाव है कि मध्य प्रमाण में शिखरगणी  
 को धरण करने में प्रयत्न शील, + सम्पूर्ण चय समता हम है मन्त्र  
 धन लिनरा वेम यागी जन पका त - जन धन में अत्यन्त शमनान् म  
 मुक्ति प्रदान करने में समर्थ ज्ञान, २५३, ५ और तप रूप बार आराध  
 नाश्चा सा भात हुण, शीत - ध्यान परमात - य याधाया २ उरा मनुष्य,  
 दय, एवं तियञ्चा द्वारा स्त्रिय गय प्रमर्गों आर भुरा व्यामादि जय  
 वेदनाश्चा क कारण नरा भी प्रियलित एवं मन्त्रिय नही दूता ।

जो मन्त्र पुण्य मात्र २ य ३ क द्विविध समार का अगार जानकर  
 कीपड़ सा लगाकर ध्यान की ५५क्षा उम नष्ट-ही न जाँड़े रस  
 नीति का अनुसरण करते हुण, याग मन्त्र अनादि मन्त्र नाथ छू ।



नियोगदेतुस्तेऽपाननाताततक्रयाऽशुभमात्रमपादनेऽपल दग्धा-  
 धूमयया मातृचरया विदीयभागोऽपि परमप्रदप्राप्त  
 वैराग्यगलेन क्षणमपि किञ्चिदपि स्नानुपवादच्यमान  
 परमानन्दसदोहास्पदा परमनिवृत्ति लेभे । यथाऽहम मत्सराभ्य  
 महाभागो या नमदानदोनीनगारदेहाऽध्वानविघाटतनदी  
 पुलिनद्वारस्त्रयन्नरीप्रवाहगाधतन विनाचनपरण नमदामप्ययेन  
 दशाननपितामहहृन्ननप्रत्यपचिकीर्षुरावयोनाजौ जित पुनश्च  
 विश्वनिरपक्षधुमहासुनिना मदुपदिष्टेन स्वतन्त्रादृत प्रशस्त  
 याऽऽदत्तो राज्यमपद्भोगाय स्वम्बुष्ट परिणयनाय बहुशो

क्षण भर के लिय भी अपने स्वरूप में विचलित नहीं होत था।  
 सुकौशल मुनि वचन है जो इस प्रकार वैराग्य का प्राप्ति होकर अलौकिक  
 अत्यर्णनीय आनन्द की भवार स्वरूप मुक्ति का प्राप्ति हुआ ।

यह भीभाग्यशाली मातृचरिण वचन है कि अपने पिता मह  
 [वाचा] में प्रतिकार करने की चेष्टा करने वाले तथा नमना में रानिय  
 के साथ जल काड़ा करने से दूर हुए तथा न नार में बन्ने वाले का प्रवाह  
 से बाधित और नमदा के नीचे स्थित होने पृजा में तत्पर अतः तर कुपित  
 हुए रात्रण के द्वारा युद्ध में पराजित हुआ किन्तु संसार के निरपेक्ष व पु  
 महासुनि के उपदेश में पुन स्वतन्त्र किया गया और उसी समय  
 सत्य अनेक जगमात्रक रात्र्या में सम्मनित माना हुआ छाड़ा हुआ  
 अपनी राज्य संपत्ति को ग्रहण करने के लिय और रात्रण की लड़ना का  
 विवाह के लिए अनेक बार प्रार्थित माना हुआ, पहिले में भी विपुल  
 सम्पत्ति को हारने में आइ होन पर भी कल्पना नये अभिलाषा का मूल

निवेदितोऽपि पूर्वतोऽपि त्रिपुलमपदा करततगतत्वेऽपि रुष्य  
 नाकलितरुनामभिनापा मूलता विभेद्य मगलमयी त्रिनदीवागा-  
 दतवान् । भो आत्मन् ! विषयमेव न निबध । विषयसेवनाद्भूता  
 तृष्णापतुमतिरहितिलपरिवाराभविचारितरम्भा दुर्निपाता  
 भोगभिलाषा गुह्यना दूरत पय पन्थियज्य स्वमवेदननिमित्ता  
 स्वमवेदनाद्भूता मनुष्टिगुमतिर विगारिवारामनन्तसुखप्रदा  
 समता भज । यथा यथा सुगन्धम्या अपि पञ्चाक्षरिपया अनभिल-  
 पिता भविष्यन्ति तथा तथा वर्जगमूला समताप्राणास्यति, यथा  
 यथा मा ग्रीणास्यति तथा तथा दुरन्तस्वमासा विषया अरोच्या

न्देयन कर मगलमया त्रिनदीवागा का प्रमाण करताभवा ।

“आत्मन् ! विषयमयन म कारणाभूत तथा विषय मयन म  
 दृश्य, तृष्णा आसक्त, दुर्बुद्धि और पाप यो ” मगल विमका, त्रिना  
 विचार क्रिय सुन्दर लग्ना गाना अयन गाना है फल निमा ऐसा  
 नरक की बुद्धिना (यस्या का रमाल) का दूर म ना त्य गकर आत्ममयन  
 का प्रधान कारण स्वात्म मयन म य, म गप सुगुह्य ज्ञान हा है  
 परिवार विमका ऐसा अनन्त सुगन्ध का देने वाली समता का आयल ।  
 वैम वैम सुलम्भ भी पञ्चाक्षरिपया न विषय अभियल न लगेंगे वैम हा  
 समान सुगन्ध के कारण समता तुम्हें प्रयत्न करेगा । जैसे न तू समता  
 रसम दृष्ट होगा वैम न दुःख हा है परिणाम जिनका ऐम इन्द्रिय विषय  
 अधिकतर प्रदान होंगे । निश्चय हा विषयो न अरोच्य ज्ञान पर कोइ हानि  
 नहीं होती है यदि नित्य य अनादलता ही है लक्षण विमका ऐस अनन्त  
 दुरमय परमात्मतत्त्व की प्राप्ति होती है ।

मपिप्यान्त । न यत्तु विषयाणामरान्यत्रै कानित्वनि  
 प्रत्युत शारयतिशानादुनत्वावगतान तमौज्यमयारमत्रद्व वया  
 क्षिभयति । न चाननुभूतमाम्यरमास्वादाना ज्ञेयलुब्धानामनुद्वा  
 नामप्रियत्वे साम्यसुत्रामागरस्य मइत्य छायेन । नाज्जलवृष्णा-  
 ज्वलनज्वलन्त प्राणना ते रुमपि वाभरसुमोदगहनगहन  
 रम्भमन्त, साम्यसुधाविधाम्भारमपि सम्प्रप्य शिररमार  
 मद्वाभागीतस्यमभित्तिजसुत्तामताशीखरसल्लवमान पियान्त ते  
 जननजरान्तक जुतपायस्मयस्मयमयमादभयारतप्रिपादानद्रा-  
 चिन्तादिदोषप्रित्तममृतत्वमयानन्तमुखमगिना भवान्त । हा  
 रुडम् हन्त यदन तनानदशन सुखराकु तमय

समसारम कस्याद के अनुभव म रहित एव ज्ञेय पन्था क लाभ  
 म हा फम हृण भूर्ग पुरुषा क लिय अप्रिय दान पर भी समतामन का  
 महत्व कम नहीं जाना ।

भभक्तो हृद् तृष्ण गान म जलते हृण महा भयानक माविष्ट  
 संसार घन में चक्कर लगान वाल भी जो प्राणीसमनामृत सागर क  
 तिनार तक पत्रकर शिररमणी ना परण करन वाले भागवदान पुरुष  
 द्वारा किया गया है आस्यादन निमरा ऐम ररमंजन जनिन साम्यसुधारम  
 की एक नूद भी पी लने हैं वे शीघ ही

मजरा मरा भूय प्याम त्रिस्मय अरनि यन् निद्रा चिन्तानि अप्या  
 त्त रापा मे रन्ति अमन्त अविनाशा सुय क अविकारा दात हैं ।

हा । यन् है कि यह आत्मा अन्त ज्ञान दशन सुखात्मक  
 प्रचिन्त्य अमीम शक्ति युक्त होकर के भा निजस्वरूप का प्राप्ति करन के

स्वरातिवृत्तत्वेऽपि महत्त्वम् प्रतीयमानं ननु दुःखं नो भवेत्तद्वत्  
 न तथा परिणमन् । भो आत्मन् ! त्वं नान्यत् न त्वं स्वराति  
 बाधान म्यादन्तोऽपि स्थायिन मन् । नन्वे त्वं स्वराति-  
 खिलपरद्रव्येषु रमणे बाधान्तामस्य न त्वं स्वराति-  
 रम्यविषयार्थसार्थाणां परिणमन् न त्वं स्वराति-  
 मान जगदतत्किल देहात्मदृष्ट्या विद्यमानं न त्वं स्वराति-  
 त्मन्येरात्मदृष्ट्या परितीनि मांस्वराति-  
 अतः प्राग्गदामिभ्रमनदुसमिदं त्वं स्वराति-  
 मित्तु जगदादृष्टिनाशक लोकोत्तर पादोद रन्दोत् नृत्तिन

लिय मुग की कथा की अपत्ता काम नद म्पु मुली होने का  
 परिणमन नो करता ।

ह आत्मन् ! मुग की वृत्तिमेति-  
 तथा नो नाश न होने वाला हा । त्वं स्वराति-  
 अनिरित्त समानतापाय अत्रा क न त्वं स्वराति-  
 परपत्ताय न मयन म त्वं स्वराति-  
 म व (अवमन्ति) न त्वं स्वराति-  
 लगा वाले के विषयभूत पत्ता का नाश न हो-  
 सन पर त्वं स्वराति-  
 ही निरर्थाय एव अनरहित मुग का नाश न हो-  
 ऐसा नही है ।

दृश्यमान यह  
 वही गंगा जीओं क ।

चंद-  
 ोष्य  
 सन्  
 त्या  
 त्  
 शी-  
 श-  
 पु  
 थ  
 ( क  
 (री  
 उ भ  
 प्रका  
 बाध  
 शदि  
 दि  
 ग  
 श



परज्योतिर्मय प्रियेद्दिन चिदानन्दमय त्रगद्गुरु मेरुस्य । सरस्य  
 पश्चिमापार्जितरुमनिषारमनुभुञ्जता । भिन्नभिन्नगतिमम्बन्धिद  
 व्यादिचतुष्टय विहायतमानविपुर्गामिनो दृश्यमाना इमे म्यायुषा  
 क्षीणरजनानाश्चिदभिन्नविग्रहधारणाय भादिति गभिष्यन्त्येव ।  
 मृतुकृतमनिषाकनिर्नरामूला कल्पनारुनितरुला सपदयम्  
 मुस्तसमाप्नो भुज्यमानायुष समाप्नो च प्रियुक्ता भविष्यन्त्येव ।  
 पुन कदाशास ? अ युश्चुलुरुनलनद्वपुर्नलप्रिनेलापद्धपीरुविष-  
 याथैश्चपलापत्तय एव निनश्यति । पवि पविमाना यथा क्षण  
 मात्र सयोगो भवति । नर्भियोगोऽनरभारी तथैवात्र चान्धमाना

होता हो किन्तु आत्मा-मुक्त विचार धारा वाली अन्तरात्मा पुरुषा क लिये  
 मात्र जले क्षणिक अचेतन आत्मा अनेक हनुआ स मार र द्त हान स किस  
 तरह विश्वमनाय एवं रमणाक हो मरता है ? किसी भी तरह नहीं । अतः  
 पत्ति हो भाति धर्म स पदकर अन्तःपुत्रा हो ग्यानरूप इस संसार स  
 गन न हा नि तु संसार त्यागित को शमन करने वाले अर्न्तःपुत्र शरण  
 प्रदान करने वाले होपरन्ति परम ज्यानिमय अग्रिल उम्नु क ज्ञाना  
 चिदानन्दमय त्रगद्गुरु को सरो । अपने अपने परिणामा स प्राप्ति हुये पूर  
 कभा रे फल क भागन वाले विभिन्न पहिला नदी गति सम्यगी द्रव्य  
 क्षेत्र काल मात्र को द्वाइसर नश्यमान शरीर स निवास करन वाले य  
 समस्त लोकर अपने आयु कर्म स समाप्न हो जान पर तथ शरीर वारण  
 करने क लिये लोक की अनर निशाआ स अग्रथ्य हो जायेंगे ।

अपने पुण्य और मरिषाक निचरा के बल पर प्राप्त हो गई यह कामनिर  
 स सम्पत्ता पूर्वापापन पुण्य की समाप्ति अथवा भुज्यमान आयु कर्म

सयोगोऽत्र एव । विविधस्तादृशजन्मवर्णनेन सुरमितकुसुमचद-  
नालकरणेन स्वच्छमनोरमवनस्नानेनातिलालितोऽपि दहोऽप्य-  
क्षणमात्र एव जीयते क्षणस्थितागपि विविधामयाधिष्ठानं सन्  
पीडानिबन्धनो रोमवीत । यत्र चोत्सवधिनो दहस्येय कथा  
तत्रात्यन्तविपिका सपद ह्युधमफलितलक्ष्मीनाम्नी को वर्णयेत् ॥  
आरम्भे मनापिनीं प्राप्तागृह्णति सोऽप्येव दुस्त्यजेय लक्ष्मी-  
श्चक्रिणा एव्ययतामपि शोचन्ती नाभासन्ताऽयेषा केषां यद्वा-  
निरागम्या रोमविप्यति । अतो मुमुक्षा ! एतेष्व्वात्मविरिक्तेषु  
परेष्वर्थेषु प्राटममतामुच्च । नात्र जगतीकोदे जन्मनरामरण

की समाप्ति हान पर निम्न दह जन्म पीष से अलग हा जायगी ] फिर तू  
ही बता कहा प्रियाम करना दे ।

आयु चुन्ल के चल की तरह क्षण भर गिर जान वाली शरीर  
समुद्र की तरंग समान, और चट्टिया के विषय विजली की तरह क्षण भर  
में ही नाश हो जाते हैं ।

माग में एक साथ चान वाले यात्रियों का संयोग जिन प्रकार  
एक क्षण भर के लिए होता है उसी प्रकार इस संसार में बहुत यात्रियों  
का समागम भी अस्थायी एवं क्षणिक है । नाना प्रकार के स्वादिष्ट  
व्यंजनों से

सुगन्धित चन्दनादि द्रव्या के मयन से, स्वच्छ मनाहारि जल स्नानादि से  
लालित एवं पोषित भा यह शरीर क्षण भर में ही विनष्ट हो जाता है ।  
तथा पत्र तन साथ १० ३ एक तरफ अनेक प्रकार की पीड़ाओं का आश्रय

विपत्त्वलेशनिवारणेऽन्ये केचिन्मत्यामत्यशा अग्निं क्षमा । निरप-  
 रिचिता अप्येते वा घना सुहृदश्च भगितव्यतास्त्वमेव केवल  
 मग्लार्कयितु क्षमिष्यन्ते । न परम साक पर्याटिष्यति । सर्वथा  
 शरणनिहीनेऽत्र कार्त्तः प्रातृष्टाया आश्वामन माहमहातमोऽग्निल  
 मितमेव स्वापार्जितपानरूपाके केषा कीर्तिसम्मानादिना साहाय्य  
 प्रदत्तम् । वस्तुतो हृद्यम् २५॥ धान्या स्वार्थमायकाननुचितरीत्या  
 प्रशसमानास्तथा संसरणमूलमोहबधे साधकतमा भवन्ति ।  
 अस्मादात्मन् ? शुभाशुभोपयोगविलक्षणतार्तीयकारथान्तरप्राप्त-  
 स्वोपयोगशरण व्यवस्य ममनःतृदितरेभ्यो द्रव्यान्तरेभ्य प्रच्या-

होता हुआ हुआ हुआ हुआ ही होता है । जय आत्मा मम क्षेत्राग्राह  
 सम्बन्ध रखने वाल शरीर की यह तथा है तत्र प्रगट ही आत्मा मे अत्यन्त  
 भिन्न लुब्ध पुरुषा द्वारा निम लक्ष्मी नाम दिया गया है ऐसी वाह्य  
 धनादिक सम्पत्ति का क्या कहना । प्रारम्भ म उपानन कात म सताप  
 देने वाली प्राप्ति होने पर तपणा बताने वाली अत म छाड़ते समय महान्  
 कष्ट दायिनी यह लक्ष्मी लय चक्रान्तियों की भी गारवानक होकर नहीं  
 रहता नव दूसरीकी कैसे विश्वमनीय होगी । "सलिय ह मुमुक्षु ! पढिजे  
 आत्मा मे भिन्न न पदार्थों म ममता भावका त्याग कर । दय समार  
 रूपी क्रीड़ा राल म जन्म, मरा मरण मम ही स्नेह निवारण करन के  
 लिये अत्य बडे २ मठनाय पदक धारा रूद्र नरद्रा नर भी समर्थ नहीं ५ ।  
 चिरकाल स साथ रहने वाला य व धु वा घन मित्र आत्मा क्षमा । न  
 दान वाली तेरी मुख दुःखामय हानी ( भावने बना ) का अगला न  
 मात्र ही कर सकत म मम मम पशु नहीं कर मम और तेरा रे

दृष्टि

व्यस्योयोग एव रतिमुपैहि तमेव चानाकुलत्वलक्षणत्वेन  
स्वभागतोऽमुगस्वभागाभागात्सताप्यसतोपमागर विज्ञाय तत्रैव  
तृप्तिमपि भजस्व ।

यथाहं त्वमे सरे समाविष्टा तुर्गत्यक्लेशमुपलभमाना  
अनन्तद्रव्यतन्त्रात्फलभवभागपरिवर्तनानि कुर्वन्ति । नात्रैव केचि-  
त्परमाणु मन्त्रिये त्रयाऽनन्तशो न भुक्तोऽङ्गितास्तदप्येतेषु-  
जडेषु स्पृहालुर्भवति । न चात्र त्रिचरवारिषादधिः त्रिशतरज्ज्वा  
एकगभाया त्रिनगत्या मिश्रित् क्षेत्रमस्ति या प्रदेशानुक्रमेणाप्य-  
नन्तश पर्यायेण न ज्ञातो न मृतश्च हा कष्टम् तदपि पतिरुमपि

यहां से प्रमाण करन तक तरे साथ ही चारोंगे । सभी प्रकार में शरण  
रहित इन गहन संसार वन में प्रतिष्ठा, आदर सम्मान कीर्ति, प्रशंसा  
आदि की अभिलाषा करना दुर्निवार माहाधकार की लीला मात्र है ।  
तू हा घना 'पूर्वापार्जित शुभाशुभ कर्मादय जय दुःख क असर  
पर इन प्रतिष्ठा सम्मान कानि आदि ने किन ० की सहायता की ? वस्तु  
स्थिति तो यह है कि अपने स्वयं साधन में तत्पर स्वार्थाय लोग दूसरों  
की भूठी प्रशंसा कर न्ह मुलाय में ढालकर उत्तम संसार का प्रधान  
कारण जो मोक्षीय कम उत्तक पध होन क ही साधन होत हैं । अतएव  
हे आत्मन् ! परनिमित्तक शुभाभाषयोग में भिन्न स्वार्थ ज में आत्मानु-  
भूति की हा शरण मानकर अपने मन की आत्मानिरिक्त पर पदार्था से  
हटा कर आत्मोपयोग [निचानुभव] में ही द्वाचित हो । अनाकुलता  
स्वरूप, दुःख मात्र से रहित उस अपने निज स्वरूप का ही मंताप समुद्र  
जानकर वमी में नृप होकर रमण कर ।

चेष्टाभवलोपयितुं गन्तुं तत्रैवोत्पत्तुं दुर्धाञ्छसि । नागानन्तो  
 तत्सर्पिण्ययमर्पिणी-मय रूपकालममृदलवर्णोऽनीने काले सञ्चित्क-  
 लसमयः यदा त्वमनन्तशा न जातो मृत । न च गयस्त्रिंशमा  
 गरोपमैरुनिंशत्मागरोपमा त्रिपञ्चोपमा वा काचिद्व्यवस्थिति  
 रायुःस्थितिर्वा या गतिव्यवस्थितैरमपयद्विवर्णोऽप्यनन्तशा न  
 प्राप्ता । तथा च ससरणनिबन्धनपरिणामाथानानि चैकैकारि  
 भागपरिच्छेदेष्वद्विवर्णोत्पत्तयानन्तशोक्तानि । तथापि दुःख  
 हेतुमानितानि तान्येव निमित्तानि लालुम्यसि । अथवा निगोत  
 शरीरेभ्योऽल्पसमयत एव प्रत्यग्भवनाय सभवनं जायामप्येत

हे आत्मन् ! तू इस प्रकार चिन्तन कर । मेरी तरफ से समस्त  
 संसारी जीव क्षणभंगि सम्प्रतीति के नाना प्रकार के अमरत्व कहना जो भाग्य  
 हुए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भय भाव आत्मिक अनन्त पंच पराधनन करते हैं  
 तान लोक में मेरा कोई प्रमाण नहीं है । किन्तु तू अनन्तवार भोग  
 कर छोड़ा है । आश्चर्य है जो तू का यह प्रार्थना मैं क्या समझता  
 है । तान सौ तैलालीम रज्जु प्रमाण में तीन लोक में मेरा चरा भी क्षेत्र  
 नहीं है । अतुल्यमग तू अनन्तवार उन्मा तथा मराना है । मरान  
 रोद है । जो तू इस पगन के किसी भी क्षेत्र पर प्रत्यन रा राना नहीं की  
 तथा अतन्त होने की दुभारता करना है । न ही अनन्त त्वर्पिणी अवम  
 पिणी के समूह रूप पर काल प्रमाण अनन्त काल मरण हुए भी  
 ऐसा क्या है ।

अतः तू अनन्तवार पैदा हुआ है और न मराना है । तथा ३३  
 सागर अथवा ३३ सागर प्रमाण में प्रत्येक प्रमाण में भी कभी भी भव

द्वि निश्चितमेव यस्मिन्नाह प्रतिपादितरीत्याऽन तपश्चपरिवर्तन  
 मुखेन दवै विज्ञापितोऽनतराल बलेश मोनभोज निःस्मा-  
 रित । हे आत्मन् ? यथाऽऽत्मातिरिक्तमर्थांमार्थाणा परि-  
 णतौ तत्र स्वामित्व न वर्तत तथाऽऽत्मपरणतावेवामर्थाणामपि  
 स्वामित्वं नास्ति । मुधा विग्रहताममुभयम् । नहि कश्चिदर्थ  
 स्त्या प्ररयति य मा स्पर्श मा रम मा । नघ मा पश्यमा णु मा म  
 नुरज्यप्तेति । त्वमर म्बुद्विदापण प्राग्निदितभावाविशुद्धिबद्ध  
 वमिधर्वरिषिपाकमये तानिष्पानिष्टान्वा रु रन्त्य स्वतन्त्रा लप  
 यमि अतो द्रव्यान्तरस्य द्रव्यान्तरस्यात्याद्य म्भमाधोच्छेदाभावात्

भिन्न अथवा आयुर्विज्ञानि शेष नहीं बचा जिस नरकात् चतुर्गानक्रमम  
 तथा समयवाद्ध क्रमम तून प्राप्त न किया है । समार क कारण भूत -  
 अन त परिणाम स्थान हैं नम म एक भी म नहीं बचा जिस नूने एक  
 एक अविभाग प्रत्यक्ष ५१ वृद्ध क्रममे अनन्तर प्रप न किया हो  
 तो मा दु स्य क रान्तक अन नवार भ ग दुःख उद्ध कारणों क तिय लान  
 करना है न्ह अवनाना चाना है ।

अथवा निम्न गरीरा म म थोड़ ही समय मे निवलन न  
 म रना की दगा म भा यह ना निश्चन ही ह नि मिद्वान्त म कदा ग  
 रीन क अनुमार अनन्त पञ्च परिवर्तन का शैली मे व्यतीत होने वाहा  
 मदज्ञ दय क द्वार बनाया उनना अनन्तकाल बलेश को भोग भोग क  
 नि ल दिया ।

• आत्मन् ' जिस प्रकार आत्मानिरिक्त समस्त पदार्थ समूह क  
 परिचिन में तेरा हाथ अथवा प्रचुर - ही ह उसी प्रकार ' निरपरिणति-म-

स्वप्नेनाश स्वोन्नति वा स्वपरिणामेनैव निश्चयदृष्ट्या व्यस्य  
 निष्कलङ्कपरमशातपरात्पर—विज्ञानदर्शनमुखशक्तिमयस्वरूपाद्  
 निरतने परद्रव्याश्रयमूलक सावयवानाम्प्रयपानप्रवृत्तिनिरति  
 लक्षण यत्न विधेहि । अन्यथाऽस्मिन्नगरणमसारे यत्किमपि  
 निमित्तप्राप्य स्वमेव केवल व्याकुलीभवन् वम्भ्रमिष्याम । न  
 ह्यत्र न चित्ता कृत कर्मोन्मोहो भुङ्क्ते सविपाकनिजरणैरुकार्यस्य  
 र्मादयस्य वृन्त वृन्ताद्विशृष्टस्यकलस्येव प्राप्तनम्बन्धाचेत्यप्रभाय  
 कत्याह । लोकेऽपि विस्फुटमलोरयत एव ज्वरजनितशरीर  
 णि रत् स्वार्थविषयोपभोगविद्विमाधनत्वेन पुनरुल्लादिभिर्बहु-

तरे न भिन्न इन परपदार्थों का आधिपत्य या घटपारा नहीं है । व्यव ही  
 तू विशद हो रहा है ।

निश्चय ही कोई भी पदार्थ तुम्हें एसी प्रेरणा नहीं करता कि 'तू  
 मुझे दू मेरा स्वाद चख, मुझे सूँघ, मुझे देख, मुझे सुन और मेरे म  
 अनुगम कर । तू स्वयं ही अपनी अज्ञानतावश पहिले किये हुए परिणामों  
 की अविशुद्धि से बद्ध हुए कर्मों के विपाक काल के उन पदार्थों को दृष्टा  
 निर्य मानता हुआ अपनी स्वतंत्रता का नाश करता है । अतएव एक पद्व्य  
 का दूसरे द्रव्य द्वारा उत्पाद अथवा वन्देद नहीं होता, अपने द्वारा ही  
 अपनी सृष्टि और विनाश होता है ऐसा भक्ति भाति निश्चय दृष्टि से  
 निश्चिन्त करके निर्दोष, परमशान्त सरोत्कृष्ट अनन्त दर्शन, ज्ञान मुख शल  
 मरूप अनन्त चतुष्टय मय अपने स्वभाव से इन्ता पुनर्क अवस्थित रहन  
 के 'लय परद्रव्य का आश्रय है कारण चिन्ता ऐसे होने वाले अध्यवमान

शाऽनुग्रहाक्रियमाणोऽपि स एव क्लिरयते । न कश्चिदपि निरा-  
 स्या यदसौ विपदि माहाग्न्य विद्वधास्यतिसर्वपात्रमेव प्राणाना स्फुटित  
 स्पृष्टत्वात् परिणामाना च चणचणाभिनयपरिणमनशीलत्वात्  
 तता निर्विसबाधमेतत्-यदेक एवात्र जायते एक एव म्रियते एक  
 एव क्लिरयते । एक एव च जन्मपरिगता भवति नान्य कश्चित्कले-  
 शत्वमपि विरुक्तं शक्नोति । मत्तया परस्परतो निभिन्नत्वं द्र-  
 वत्तायाश्च भवत्येव निश्चीयमानत्वात् । ह मात्मन् यदा त्वया  
 नितर्विधिपावदश्च न समुत्त दपुत्राय तव सहचर न विद्यत तदा पुन  
 कलत्रमित्रादीना माहचर्यस्य का कथा । इमे खलु वि ५४ ५५

भाग की प्रवृत्ति का निवृत्ति का जाना है मरूप नितया ऐसे आत्म  
 प्रयत्न को करा ।

अथवा निराश्रय शरण इति अस संसार म वरा म भी  
 निमित्तकी पाकर दुखी जाता हुआ अनन्त काल तक चक्कर लग ता  
 रहेगा । दूसरे क द्वारा सजिन कर्मों क फल का दूसरा नी भागना क  
 क्योंकि सविपाक निरक्षण हो है एक काय जिसका ऐम कर्मोंका  
 'जैस हंटल बिट्त हुए फल वा अस समय हटल से ही प्रभव होता है'  
 पहिल जहाँ मरु व का उम चेतन म ही प्रभावपन होता है ।

लोक म भी स्पष्ट देखा ही जाता है, कि अपने स्थाययण परिचरों  
 म तपर स्त्रा पुत्र कुटुम्बी जनानि के द्वारा अनक प्रकार से सेवा शुश्रूषा  
 देखान किय जाने पर भा वर प्रभृति रोगों से पाडित कोई व्यक्ति  
 त-उ य देना से वह ज्वेला ही पाडित होता है । कोई उममे हाथ नहीं  
 बचा सकता । किसी का भी सहा धिरास्त नहीं किया जा सकता जो



॥ भस्माश्च सन्ति त्वत्परेषा देहसम्पन्धिना भातपुत्रादीना मुहदा  
 ॥ १ ॥ कर्मणा विभावानाश्च मयोगादेन चातुर्गत्यात्मदोह घोर  
 ॥ २ ॥ म म गहने भयविपने विस्मयन्नात्मान यन्मभश्च मुर्धवाश्रुते ।  
 ॥ ३ ॥ एष खलु त्वमेव भगवानात्माऽनावुलत्वलक्षणसुर्यामृतमागर  
 ॥ ४ ॥ यथ परेषा सुखदायि यममभ्रमेण विरुन्ध्य भुवैव चेकिलश्यने  
 ॥ ५ ॥ तत्रैतय स्वात्मानमेव सुखस्यभाय विरुन्ध्य न तदमा मिथ्याभाव-  
 ॥ ६ ॥ तमो निवार्य परम्यश्चेतोव्यावर्तय । परारम्भरक्षणमग्रेऽप्य बहुश  
 ॥ ७ ॥ म तत् प्रयत्नशीलोऽपि भयन्न रुदानिदपि शांति प्राप् यमि केवल  
 ॥ ८ ॥ पुद्गलकर्मप्रत्ययत्वेन जड वभाषेपु चित्तेय पर्यायरूपत्वेनावस्थि

जिप त्त में सहायक हो सके । क्योंकि समस्त हा जोर अपना ही दिन चाह  
 सता है और परिणामा म भी कुछ कुछ भर म अक प्रकार परिवर्तन  
 हुआ करत है, अब यह बलपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि आज किसी  
 भी कारणवश अनुकूल हुआ व्यक्ति कल भी इसी रूप म रहगा । इस लिय  
 यह निश्चिन्ता है कि संसार म जीव अकेला ही जनमता है, अकेला ही  
 मरता है अकेला ही दुःख भागता है । आयु की समाप्ति पर बुढ़ापे में  
 उत्तर जान यात्र दुःखों का अकेला भोगना हुआ मरण को प्राप्त होता है ।  
 प्रिय म प्रिय आत्मीय म आत्मीय व्यक्ति भा वसर दुःख को घटान म  
 सम स नहीं हो पाता । क्योंकि समस्त प्राणी एक दूसरे से विभिन्न हैं और  
 किसी भी होनहार उस हा होने वाले म ही निश्चित है ।

हे आत्मन् जब स्वयं तेर द्वारा उपायित कर्मादय से मिला यह  
 मनुष्य राहोर भी तेरा सहचर सहायक नहीं है तब तेरे म स्पष्ट निरान्त  
 प्री, पुन, मित्रादि का तो कहना ही क्या ? य तो किसी भी प्रकार

यमानत्वाच्चदाभामपु रागद्वेषाद्यध्ययमानपु परिणम्य परिणम्य  
 स्वरूपमुत्तया । परम्पादानानाहुलत्पलचणपरमसुखभावदात्म-  
 नत्वात्प्रच्युय त्विधिरन्तरूपशान्तिप्रत्यनाकनाज्वलननथानी-  
 याशातिमनावाप्यमि । तत् त्वयैयाराप्तये पुरा खो ज्ञातव्या  
 वश्चारीत्य भृता विनेया यत्र गति शायतथैर्य मयति ।  
 न हि स आत्मा क्राधादिभावेपूपलभ्यत तेषा दु गफलत्वाद्दु खदत्त  
 त्वादशुचित्वादिपरीतप्रभावमात्रादशरणत्वाच्च । क्रोधादयः  
 शिलाहु रम्पसार नाहुवा पराहुनत्वात्वादकन्याचरु खहतव ।  
 आमातु प्रायकैकप्रभावत्वेनानाहुलत्प्रभावत्वाद्दु खफलस्तथा

तरे अनुगामी या मयोगो नही होसकने । यह सत्र तेरे मे स्पष्ट रूप में  
 भित्र है तू अपन मे स्त्रि इन देह स मर्चा घत, माना पिता पुत्र, मित्र  
 कलत्रादिक सयाग मात्र स न्दप हान वाले चतुर्गति सम्प्रर्था इस महान्  
 घोर भीम भयावह दुख समूह को गहन समार वन में अनिशयरूप स  
 धार धार भमगु करना हुआ अपन आपनो मुलकर द्यव्य ही प्राप्त करना  
 है । यह तू ही ना अनात्मना स्वरूप पुत्रामृत का भटार भगवान् आत्मा  
 है सो कैसे

भ्रमरश परपत्नार्था को पुत्रदाया मानन्यर्थ ही क्लेशित होता है ।  
 उसलिये अब भी चेत निजआत्मा को ही सुख स्वभाव जानकर अपन  
 मनमे मिथ्या भाव का दूर कर परपदायों स अपन चित्त को हटा ।  
 आत्मातिरिक्त स्त्री पुत्र धनादि क मरचण एवं समूह स निरन्तर अनक  
 प्रकार प्रयत्नशील होता हुआ भी कनी भी शक्ति को  
 केवल पृदगल उम के निर्मला स होन स नइ स्वभाव वाले



न्यायः प्राप्तुमशक्यत्वं दोषात्मकमात्राहितत्वाच्चाशरण्यं आत्मा तु  
 एवमूतवनामपद्य तुत्वादन्यथानन्तं यावत्स्थीयमानत्वात्तात्मस्व  
 भावस्थानवर्मात्वाच्च शरण्यमूतः । एवमफलमुत्पत्तुं नात्मशुद्ध-  
 स्वरूपादिमक्रोधादिभिर्मन्त्रा अत्यन्तविरिक्ता मन्त्येनमुनश्चित-  
 मत्तु । अतो मो आत्मन् रागद्वेषमेषु क्रोधादिभावेषु राग  
 मुख्य । नहि हरिव पराङ्मस्त्रा कथमपि त्रेरयितु शक्यस्त्यमेव तस्य  
 निमित्तत्वप्राप्य मुधाऽज्ञानन विह्वनीभवयि । तत्र यदा कदा च  
 प्राग्गद्विदितीत्रविनाशतन्मयि निमित्ततरथा परिणतिः स्या  
 तदापि त्व तत्परिणतिरागामावस्थापि मया ज्ञानशक्त्याऽनन्तस-

क्रान्तमान मात्रा राग द्वेष आदि आत्मा म कनुपना ही पंदा  
 करते हैं तथा सत्य कनुपना स्वभाव वाले हैं इसलिये उनसे अशुचिपना,  
 मदीपना स्वय । मिद्ध होता है । जैम नल म काइ अथवा कचह मे  
 मैलानन अवश्य हाता है । पौदुगालिफ रमों स उत्पन्न, एव लडना मे  
 आनप्रान य काधादि आभायिक परिणमन आवुल्लतामय हाते हुण भी-  
 इनम ला चेतनाभाम प्रतान होता है या य इस रूप म अपन का प्रकट  
 करते हैं य सत्र इन सो रिरात स्वभावता है । मगयान चिदानन्दमय  
 आत्मा ला अनादि बाल मे स्वय सिद्ध है, तथा अय, चेतनव्यतिरिक्त  
 पुद्गलानादिक परद्रव्य मे उत्पन्न नहीं है इसलिय वह अपने को सहज  
 ज्ञाता ज्ञ्या रूप म ला वर्तस्थित करता है यह स्वका निज स्वभाव है ।  
 निरचय मे काधादिकों क दुस्तर स्वरूप एव दुःखा क कारण होने स तथा  
 अपमुक्त हो जाने पर (जनका परिणाम भोगलेने के पश्चात्) वसी रूप म  
 बन रहन में असमर्थ हाते म, आत्मा ही निरुपाधिक स्वाभाविक

सार जेतुं शक्त एव, ज्ञातुर्भगवतो । वपुलमहिमत्वादन्यथा तत्स  
 तत्पत्यन्तापिनाशन माद्य एव दुर्धनस्तनय सत्प्रयत्नाऽप्यु मत्त  
 चेष्टितवत्स्यान्न च तयोर्दुर्धन्य वा समवदन्प्रत्यक्षानुमानाग-  
 मदिभिः सुप्रसिद्धत्वात्, अतश्चैतदया प्रावदव्या मोक्ष मोक्षोपा-  
 यश्चोपादय निज्ञाय तत्सत्प्रयत्न दुर्गममात्मान गफलप्रिय मन्य-  
 मान, सर्वविभावशून्ये निर्दिष्टव्य नापश्यभाव परमे भ्यात्मनि  
 विश्रान्तिमुपैहि । अनन्य विधानेन सर्वमौख्यमपत्कर इमं  
 महान् सवरो भविष्यति । सवर एवात्मान ज्ञानचेतनाया नात्रि  
 सस्याप्य अज्ञानिजनदुस्तीर्यममारसागरतीर नेष्यति । सवरम-

परिणति क घालक होने से अशरण (रक्षा करन में अ-मर्थ) हैं किंतु  
 आत्मा निजपद होने क कारण अल्पमार्ति ज्ञान प्राप्त क हुआ  
 होने से तथा अनाग्निसे अनवरत त त रहने वाला होने से अपने  
 ही स्वरूपक स्थानाम रहने से शरण भूत है । इतिव सम्पूर्ण सुख  
 समुहमय अपने शुद्ध स्वरूप से यह क्रोधात्मिक विभाव अत्यन्त  
 भिन्न है यह निजपद सिद्ध हास्या अतएव है आत्मा । रक्षेयान्तिया  
 क्रोधादि परपराधीन होने हुये अन्तः का होइ । का ४ । परपराधमे  
 किसी भी प्रकार की प्रेरणा करन, परामर्श देन में रुक नहीं हैं । तू  
 स्वयं ही उनके निमित्त को पाकर अज्ञानपरा विह्वल होता है ।

तुम्हारे लय कभी पहिले बाधे हुए कमा वे ती १० पात्र जैसे भी  
 नाना प्रकार की विरुद्ध परिणति हो तो उस समय भी तुम उस परिणामन  
 में राग क अभाव को करने वाली ज्ञान शक्ति द्वारा अनन्य सार जानने  
 में समर्थ होगा ही, क्योंकि होता दृष्टी भगवान् स्वरूप आत्मा की

दृष्ट

न्तरण सत्सारिणामनादितोऽपि रश्मिचये मरिपाक निर्वीर्यमा-  
 शुऽपि रश्मि रश्मि । मृत्तिमाग मिल सवरश्मिर्न महिमा यत्प्रसादा-  
 दव मुमुक्षो मोक्षसाधकान् रश्मिरातीन् मयाध्यातव्य सुख प्राप्नु-  
 प्राप्नुयन्ति, प्राप्नुयन्ति । मरि मिल रश्मिमतः शुद्धमनसत्त्वा-  
 त्मनि सामान्यवर्ग्यानां कमत्वाभ्यन्तलक्षणा । नरोध सच शुद्धा-  
 त्मोपलम्भाद्भवात् शुद्धात्मोपलम्भश्च परवीर्यभावापाठननिष्पाद्य-  
 तदपोहन हि स्वपरभेदविज्ञानम तत्र न कथमपि निष्पाद्यम् भेद-  
 विज्ञानमपि नियतस्वभ्यलक्षणानर्जनिम तत्र न शक्यम् । अतो-  
 मुमुक्षो ? रागद्वेषमादृष्टद्वेषमसारप्रमोचनादिफलशक्तिसवर-

असाम महिमा है । अथवा पूर्ववद्ध कर्मा की सततिका आत्यन्त-  
 विनाश होने से मात्र प्राप्ति हो अममम हा ना गी । और फिर सभी  
 चीज प्रयत्न भा पायला का चेष्टा की तरह हो जायगा कि तु मोक्ष की  
 प्राप्ति असंभव है नहीं और त समीचीन प्रयत्न निष्फल हो सधना क्या-  
 देना वनि स्वयंयत्न प्रत्यक्ष, अनुमान, आत्म आदि प्रमाणा में भले  
 प्रकार सिद्ध हैं ।

इस लिये "समाधिमरि वक्ष्याम मोक्ष और नमक गाय का  
 उपाद्य (माहय) चानकर उसने लिये प्रवृत्ति आत्मा को सफल जन्म  
 मानना हुआ समस्त विनाश (विकार) से रहित अपने परम पवित्र  
 निर्बिकार परमनिमय आत्मा में विश्राम ले अर्थात् रमण कर । इसी  
 विधि में संपूर्ण सुख र दत्ति को करने वाला कर्मा का महान सवर  
 (रुक्ता) होगा सवर ही आत्मा का ज्ञान चेतना रूपी नाथ भ ईश्वर,  
 अज्ञानिज्ज्ञा द्वारा दुरिषल र पर विरुद्ध न वाले स स्वर सद्गुरु के

पत्रे म छलार्याण। याथात्म्यमवमन्तन्यम् त्व मिल शाश्वति  
 भोपयोगमरूपो जीवाद्भवोऽर्था दृश्यमानच सने जगन्नित्यानुप  
 योगमयम् । कथ न्यत्यन्तविरुद्धलक्षणाविमो मपरारथो परस्पर  
 प्रतुर्हृत. नहि नाव द्रव्य क्रममि कदाचिदप्यनुपयोगलक्षण  
 भवितुमर्ति । अजीरञ्च वा कञ्चिन्न कथमपि कदाचिदुपयोगल  
 क्षणा भवितुमर्हात । अयमाप्ताम् दूर एव तावद यत्तपिरोधिनामा  
 भामत्वेनारि शून्यानामप तावाना जीवेन साक माङ्घ्र्यम्, यतो हि

किं तार लगा दगा अधान् उम समार स पार कर दगा । संसर के विना  
 सारा जाव द्वारा अर्था काल सेकल भाग पूरक कम समूह को रूपाय  
 (नाश प्रिय) जाने पर भी संसार ही रहेंगा । उमकी मत्ता में नाश नहीं  
 हागी । बगी संसर क नमीनकमौगमनतिरोवहत् तथा माचित कम  
 क्षाणनूनक समारताश हाना मुश्किल है । माक्षभाग म संसर का  
 नना अनुपम मात्मा है कि जिसक प्रसाद से नाशभिलाषी नाव मोक्ष  
 क प्रातरावी कर्म शत्रुओं को घनात् राककर या दूर कर माक्ष को प्राप्त  
 है, हा रहे हैं [विदह क्षत्र म] और हाग । अत्मानुभव होने पर शुद्ध  
 परमाणु द्वारा आरना म आने वाला कामाणुसर्गणाभा म कमतर । फल  
 न का याग्यता) की उत्पत्ति नहीं हान दना मसर कहलाता है । यह संसर  
 शुद्धात्मावत्तयि हान पर होता है । शुद्धात्मावत्तयि परपन्था विषयक  
 माह क कर करने म रूपत्र हानी है । परपन्थाधमयी परिणति वा नाश  
 और पर क भेद विज्ञान में होता है, भेद विज्ञान भी अपन और पर

संक्षेप

अवपुन्यममानानां परनिर्मितोत्पाद्यत्वेन उत्तमानानां चिदाभा-  
 सानां क्रोधादानां जायदभासस्य च मज्जान्तस्य परस्परतो निशि-  
 क्षरमनुप्रवेगि च च स्नानुभवार्भयुक्तिरुक्तं वरिवत्पित एव ।  
 तथा च मतिं निद्वेष्टेनैतत्-न कश्चिद । इदं च मुण्डलेशावन्य  
 मिन्द्र्ये स्थापयितुं क्षमं, तेन मयस्व न रश्चिपुद्गल  
 स्वस्पर्शरमण्यं रां वयि रनोतु तां समर्थं, तत्तत्चेमांशुद्वि  
 मुञ्च यदस्य पुद्गलस्य सममाश्वादयामि यं निल विषयविषयि  
 सन्निपातलक्ष्मीं प्रज्ञानैकान्तमिदं सत्यं दत्तं परिशोभनां  
 तेन तेनैवानुभूयमानं वा । परन्तरात्रिभिश्च यं प्राप्योद्भूयमाना-

के निर्मित रूप यस्तु न कश्चिन्ना नदी दृता । अलिय ह मोक्षाभिन्नापी  
 आमा । रागद्वेष मोहात्मक मन एवम् सम र सा त्याग कराने म सकल  
 शक्ति धारण करत वाल सार की प्राप्ति क क्षिय ममस्त चराचर पदों  
 की असांलिन को जानना आ-इय ८ । चय ही तू शाश्वतिक उपयोग  
 वाला ज्ञातादृष्टा जाय २ य ह और तुम स भित, दृष्टिगोचर यह लडात्मक  
 सम्पूर्ण जगत् नित्य पयाग म रहित है । अतएव अल्पम विपरीत  
 स्वभावे वाले य दोनों [निच और पर] पयाग एक दूसरे म प्रवेश करन म  
 या एक मेक 'अभिन्न' होन म कैम समथ हा सधत हैं ? जाय ३ य कभी  
 भी किसी भी प्रकार ज्ञान दर्शनात्मक उपयोग म रहित नहीं हें स्वता ।  
 इसी प्रकार कोई भी अचेतन पयाथ कभी भी किसी भा कारणेन अचेतन  
 स्वस्व को छुड़ सके, (इन्द्रजनात्मक) लक्षण ही हवा स्वता  
 अधवा गीव से छुटत । इह जामास मात्र से भी उपयोग शूय अर्थ  
 पयाथ का ही हवा साध स्वता तो हान करवा दात है, अ



नामपि पयानिधे कल्लोलानामनुभवनं किल पयोनिपाथेन भवति  
 पयोनिधिर्या कल्लोलाननुभवितुं शक्यः, न कथमपि पयस्य  
 नुनामन् भवितुमायति । एतस्मिन् स्थिते निर्जिसपादमदः--हे  
 आत्मन् त्वं स्वगुणवर्षायानेव व्याप्य व्यापकतया भाव्यभाजकतया  
 च कर्तुं समुभयितुं च शक्नोषि तस्मात्परद्रव्यगुणवर्षाकरणोपमा  
 गयोरदङ्गार मिथात्वानुबन्धनं विमुञ्च तथा मत्वेन सत्तात्मसप-  
 त्त्वरं मवरो भविष्यति, ततश्च प्राग्गद्वक्त्रनिजरेण भविष्यति  
 ततश्च सर्वैर्मनिजगणान्तरमेव मोक्षी योगिजनैरुपेयोऽपिनश्व-  
 रा भविष्यति । निररेण हि कर्मव्यापन्नानां पुद्गलानां कमला-

यत्र पगाही रूप में पाय जान पड़े, परशुक्त, चेतनवन् प्रमान होने वाले  
 काया एक परिमाण और जीव का असाधारण स्वभाव उपयोग भी  
 अत्यन्त भिन्न हैं व भी एक नहीं हैं । ऐसी प्रतीति निजःस्मानुभव से ही  
 होती है । वस्तुस्थिति ऐसी हान पर ये स्वयं सिद्ध है कि कोई भी पदार्थ  
 अपने द्रव्यात्मक या गुणात्मक भाग का जरा भी अंश अपने से भिन्न पर  
 पदार्थ में वृत्ता सारन या मिला सकने में समर्थ नहीं है । इसलिये  
 कोई भी पुद्गल अपने स्वयं, रस गंध वण को तरे में स्थापन करके क  
 लिय समर्थ नहीं है तू ऐसा न निश्चय कर । इस लिय मैं इस पुद्गल  
 का रसाग्धान्न करता हूँ स्पष्ट करता हूँ इस प्रकार की धारणा को छाड़ ।  
 अब तब तू केवल विषय [पदार्थ] और विषयी [आत्मा] के सन्निपात  
 [मिसल] में स्वयं केवल त्रैविध्यज्ञान का ही अनुभव करना है क्योंकि  
 पदार्थ वस्तु समूह के स्वरूप आदि अनेक परिवर्तनों का उभय इन्द्रिय  
 (गणचक्षु आदि) द्वारा अनुभव (ज्ञान) होता है । वायु के चलन के योग

मन्त्रलक्षणा प्रियोग म च प्रतिममयमेव मनेपा मसारिणा  
 वागवाच्यं क्रितु तदा तन्निमनोद्भूतमुखदुःखादिपरिणतौ

निमित्त पाररन्त्यतः ह्यमुन्नी लहरीना अनुभव समुद्रमे ही हाता  
 है अथवा उमुन् हा मन्त्रा पदन कर सकता है किन्तु प्रायुको इस प्रकार का  
 अनुभव अभी नहीं होता तब वान हनपा यन् निबन्धा है कि हे आ मन् !  
 तू प्रायः व्यापक सम्बन्ध और भाव साधक सम्बन्धमे अपने गुण  
 [ सम्भावितम्भ ] और पयाया [ कमभावपरिणामन ] का अनुभवन  
 [ वन्त ] करनेन सम्पन्न हो सकता है इस लिये मिथ्यात्व पैदा होने  
 लगे परन्त्याह गुणपयाप को उत्तर कर विपश्यन् पथ उसके उपभाग  
 [ एक अहङ्कारका छोड़ । तेरी ऐसा पारगति होने पर सम्पूर्ण सुख  
 संपादित करनेवाला ऊपर अद्वय होगा इसके अन्तर्ग पूज संचित  
 कर्मनाशक निर्नरण [ दूर होना ] होगा और उसके उन्नि शेष कर्मों  
 का नाश ज्ञान मे साधु योगिपुण्याका उदय भूत अविनाशा अनन्त मोक्ष  
 भा [ स्वप्नमे अवश्य होता । कर्मरूप पारणत ह्य पुद्गलोंका अपने  
 स्वभावामात्र [ फलान्तरात्तयमात्र ] स्वयं को प्रियाग होना है उसे निर्नरा  
 कहें " आर म प्रसार का प्रियाग अत्यन्त संसारी प्राणाय प्रति समय  
 हुआ करत है । किन्तु तब समय तब प्रियागने स्वयं स्वयं दुःखात्मक  
 परिणत हो पाएँ । वह कम सुखविपाका उ अनेक दुःख विपाकी होकर  
 बिताने ] निव रक्षा विपक न होने परप्राय का अपना मान  
 अनन्त अनुराग करते हुए अनेक तरह म नाना प्रकार के कर्मोंको बाधते  
 हुए उन विपक [ फलादय ] मे पय रा द्वेषहेतुक आकुलतामय इस  
 संसारसमुद्रमे डूब कर आनश्य कर बार बार दुखी होते हैं । ज्ञानी  
 पुरुष ता अपना फल देकर और जिना फल दिय ही भड़ जानेवाले सम्पूर्ण  
 कर्मकि निर्नरा कालमें और आत्मज्ञानासक्त



शानि कमणां सविशर्कानर्जरणापमरेऽनादिमोहमदानिष्टतया  
 शानावरणादिकर्मसिद्धिनि मत्तपरपङ्गुतिहेतानवाप्त कमाणि  
 यन्मन्ता रागाद्वेपमादलवयनमारालवृथग भवितुमशक्त। सरूप-  
 गिह्याहलि। अन्यनानूनात्त्वश्रद्धानज्ञानाचरणविभायमाव्यसिप  
 मगसिपव्याप्त चातुर्ग पदु खमदोहमनुभवति । अतः फलित  
 मेज्ज-मममोज तु, र्मणा पच्यत निममश्च कमणो मुच्यते ततो  
 ह आत्मन् माद्यायी चैत्मकनयत्नविधानेन निममश्च यथा स्या  
 तया चैतय । अन्यथा स्वयमदस्यऽनादिनिघनेऽभिर्ग्लोके  
 बध्नात् तातुगत्तद् खानि यथाऽद्ययाऽमोदरास्तया सहिस्थस ।

इस समार म चतुर्गति मन्त्री दुःख समूह को भागते हैं । सारांश यह है  
 कि गमना मोह महान जोर कर्मों म यथना है और मोहराहतआत्मा कर्म  
 म दू या है इसलिय है आत्मा । यदि तुम्हें माचरी इच्छा है तो तू  
 अपनी मनसा चित् चिन् माधन सामग्री म निम प्रकार संभव हो उस  
 प्रकार नि मोह या समार रहित मनन की कोशिश कर और निमोह भावका  
 चिन्तन कर । -हो ना अनादि अनन्त इस समारमें चतुर्गात्रयामें अनन्त  
 बार घनय वरतें हुए आज तक निमन और जिस प्रकार के दुःख  
 भाग हैं व हैं उसी प्रकार आगे भी भोगेगा ।

निजवस्त्रका सम्यग्ज्ञान न जाने म मर्गोक्ति अन्तमें स्थित नवप्र  
 पयों म अर्हमिन्द्र पद का पाकर भी जीव इस ससार का अतिक्रमण  
 [पल्लवत च्छन्दन] नहीं कर पात । उन जायोंन अष्टकमी दक्षिण स्वर्गके  
 इन्द्र सीधम इन्द्रा श्री साकपाल, लीकान्तिक दश और नव अनुदिश विमानों  
 पय पंचानुत्तर विमानों म अर्हमिन्द्र पद का प्राप्य नहीं किया उसके



मत्तावत्तत्र श्रद्धानता प्रवचनरगम्यन्तः प्रवृत्तिरुत्तरं नयमपाद्यम-  
 कनारभाः सन्ति मत्तश्च श्रद्धानताता परगम्यन्ति नित्यं परत्नयमया  
 त्मस्वभावरतर्ह्यस्य धर्म य मा मा । धर्माऽपि प्रोपात्तमानन्तर्भाषि  
 मनाश्च शायप्रवृत्तिं तद्विधाभ्युदगव्ययजमभि मयाजयति ।  
 धर्मः, त्रिंशद्द्रव्यापरनामः तु न भावः द्रव्याण्य च पदं तेषु धर्मा  
 धर्माणां फलपुद्गलनामानि पञ्चाचेतनानि जीवद्रव्यं च  
 चेतनम् । चेतनद्रव्यस्य हि स्वभावविभावज्जदुःखाभावदुःख  
 चेतकन्यशक्तिमत्त्वेन कल्याणनिपये परमाद्यमुखमावस्थयमान-  
 ग्राह्यतोषटेन निपयापदत्तम् । तस्य च स्वभावो ज्ञायकभावः ।

काय का प्रवृत्तिः क विना भा रीहलौकिक त्रिभिध अभ्युदय एव अस्ति नशी  
 सुग्राका सयोग कराना । द्रव्यपयायनाची मनुष्य स्वभावका नाम  
 धर्म है । द्रव्य छह हैं । उनमें धर्म, अवम, आराश फल और पुद्गल  
 ये पांच अचेतन हैं प्रकृत जीवद्रव्य चेतन है । चेतन द्रव्य का स्वभाव और  
 विभावसे पैदा होने से पुद्गल होता है । पंच विचार पर की शक्त शक्ता  
 है अनन्तर वह ही परमात्मा पुद्गल से उत्पन्न होता है प्रत्येक करन निप  
 लपदश का पात्र है । उन उन द्रव्य का स्वभाव नाशमयता जातना  
 है । जिस समय यह प्रकृत परमाधि य राद्वेष का अपने गुण से अतः  
 होकर स्वभावभूत ज्ञानको करता हुआ अपना अत्मा लीन होता है  
 उस समय निश्चित दुःखाद्वैत भूत राग द्वेषादि विकार का प्रभाव हो  
 जानेसे समस्त आकुलताओंमें रमि हो अतः सुग्राका भवारोपन  
 जाता है । उस मंतरमें जिन लोगोंके विचारमात्रमें मनोरम लगन  
 बाने, मनमोहन धर्मापरिवार मित्राणिके रूपमें सासारिक सुग्राकी

यदायमात्मा परोक्षनिमित्तनौ रागद्वेषौ सम्प्रज्ञागुणेन व्यावर्त्य  
 एव ज्ञानमात्रं कुर्यात् । सामानं ज्ञानवन्नाप्ते तदा न क्लेशमूल  
 रागद्वेषविभागाभावात् सङ्गलाङ्गुलतारहितत्वेनानन्तशर्मसुधागारा  
 भवति । लोकाऽस्मिन् स्वतु यथा भनाज्ञाभोग्यनगरिगारमित्रायाप्ति-  
 लक्षणानि स कल्पमात्ररमणायानि सुखान् कल्पन्त म मनः धर्म  
 स्यैव प्रसादः । धर्मेशो मत्पत्पयशिष्टशुभरागमिगारस्य प्रसाद  
 इति भावः ।

तररि प्रागकामनिर्जरणाद्यभ्युपगमं ममीर्त्तानतायाः दृढताया  
 याऽमात्रान्निवृत्तिप्रापणार्हात्तैरप्ररूपताप्राप्ता धर्मा निहितः ।

सत्ता मानी जाती है मा यह सब भी धर्म का ही प्रसाद है । धर्म का अभाव  
 होने पर भी वचे हुए शुभ राग फल का प्रसाद है यह भाव है ।

एन लामों ने भी उन्व काटि का पारिणामिक मिश्रुद्धि एवं दृढता  
 के अभाव से मातृ प्राप्ति कराने में अनर्थ अकामनिर्जरा पालसंयमानि  
 रूप उपाया द्वारा पहिल भयम ज्याग्रहारिक मध्यम दर्जेका धर्म पालन  
 ही किया है जिसका परिणाम यत्नमान सुख है । लोभम लज्जपतिता पुत्र  
 होते ही लक्ष्यपति कहलाना है, उसने लक्ष्यवीश यत्नेनेलिय कोई प्रयत्न  
 नहीं किया किन्तु उस सम्पत्ति का अधिकारी वह अवश्य है । इस में यह  
 सिद्ध है कि कल्पना से बना है मन्त्र । जिसका ऐम सांसारिक सुख की  
 प्राप्ति में भी अथ पूर्वोपायोंन पुण्यपतनक धर्म को ही है । धर्म आत्माका  
 है, आत्मा का स्वभाव जानना दखना है, इसलिये मोहादि दाया

५ शुद्ध हायक स्वभाव धर्म है और उस धर्म का निवृत्ति मूलक

]

जिन जिन उपाया द्वारा अथस्थान अथवा योगता

इंगते मिल अश्चिन्लक्षपतिगृह उत्पन्न एव लक्षपतिपुत्र  
 कथ्यते, न हि तेन अश्चिन्दर्पेह प्रमो विज्ञोपार्जनाय विहित,  
 विज्ञाधिकारी च ममस्त्वेव । तत मिद्ध रन्पनाकलितकलगामा  
 रित्रमुखापानागपि धर्मस्य श्रेय धर्मश्चात्मस्वभाव एव, आत्म-  
 स्वभावश्च ज्ञायस्वभावस्ततो माहादिदापशूय शुद्धा ज्ञायस्वभावो  
 धर्मस्तस्य च रैर्यैर्निर्गतिर मे कृत्यैरवस्थापन भवति तानि मकुश-  
 लकायाणि धर्मशब्देनोपचयते ज्ञायस्वप्रयोजनत्वात् । पु सो  
 विशुद्धिरपि धर्म शुद्धनायकत्वप्रयोजनत्वात् उत्तमक्षमामार्दव-  
 र्जःशौचसत्यमयमतपस्यागात्रिचय ब्रह्मचर्यदशलक्षणात्मनोऽपि

बद्ध स्थिरा होती है वे सब स्तुत्य भी धर्म नामसे व्यञ्जितमें लाय  
 जाते हैं, क्योंकि वे ज्ञान स्वभावकी प्राप्तिमें प्रयोजनीय हैं । नीरकी  
 विशुद्धि भी धर्म है लक्ष्मी रूपकी प्राप्तिमें योग्य होनेसे । चम  
 क्षमा, मार्दव, आर्तव, शौच सत्य, मयमतप, त्याग, आर्षञ्चन्य, ब्रह्म  
 चर्य दशलक्षणात्मक प्रवृत्ति भी धर्म है निष्कामक रूपकी प्रयोजनता  
 होनेसे । क्योंकि रागद्वेष का त्याग ही विशुद्धि है, उस विशुद्धि के हाने  
 पर स्वभाव वाला हाने में संयत्न रहने वाले ज्ञान स्वभाव की अथवा प्रेमा  
 विकर परिणामा का संसर्ग न होने में शुद्धता ही प्रसारित होती है, और  
 यह शुद्ध ज्ञानात्मक भाव आत्मा का निरस्वरूप है अतएव यह स्वरूप मिद्ध  
 हुआ कि आत्मस्वभाव ही धर्म है ।

इस प्रकार जीव और अजीव अर्थात् चेतन अचेतन जिस रूप में  
 स्थित हैं उनकी सभी रूपम प्रतीति [शब्दान] होना सम्पदशन है, उसी रूप  
 में उनकी धन होना सम्पत्तान और उसे शब्दान एवं ज्ञान के अनुरूप



धर्म शुद्धज्ञायक प्रत्यक्ष इति । यत्र विशुद्धिं क्लिप्त राग-  
द्वेषनिवृत्तिमिदं स्यात् च मत्वा स्वभावरूपेण शाश्वतं स्वीयमानस्य  
ज्ञानस्वभावरम्यापाध्यममर्गतया शुद्धतैमागर्मायत, न च शुद्धो  
ज्ञानमाप्ती भाव आत्मन स्वभावेन तत इदं परात्मन स्वभावे  
धर्म । तथा चात्मानामानी यथावस्थितौ तथा प्रतीतिं सम्य-  
ग्दर्शनं तथागमं सम्यग्ज्ञानम् तदयं सम्यक् श्रद्धायः प्रज्ञाया  
त्मस्वभावे चरणं रागिभू । आत्म स्वभावश्च ज्ञायकभावेन तत  
निवृत्त एवा मत्स्वभावा धर्मं तथा चोत्तमरूपा क्रोधाव्यावृत्तिमिदं स्यात्  
सत्या स्वभावत्वेन जायते स्वीयमानस्य ज्ञानस्वभावरम्योपा-

हो आत्मस्वभाव में स्थिति हाता सम्यक् चात्रि है । और यह आत्मस्वभाव  
ज्ञायक भाव ही तो है इसलिये समझ लीया कि आत्मस्वभाव धर्म है ।  
अपरच—उत्तमरूपा जाय व आभाव [निराम] का कथित है क्रोध की  
निवृत्ति ज्ञानस्वभाव स्वभाव निराम रोन वाल ज्ञान स्वभावको  
उपाधका ससंग न ज्ञान में शुद्धता हा निर्दिष्ट है और वह शुद्ध ज्ञान  
भाव आत्मा का स्वभाव ही तो है मम निवृत्ति है कि आत्मा का स्वभाव  
धर्म है । उसी प्रकार मान भावा लाभ श्रमत्य असंयम और श्रद्धा क  
। रूप उत्तम मान्य आन , शौच, मत्त, सयत्र तपोमय गुणा क होन  
आवि नाश ज्ञान में उस ज्ञान भाव का शुद्धता हा प्रगट होती है और  
वह शुद्ध ज्ञान आत्मा का स्वभाव है इसलिये यह सिद्ध हुआ कि आत्म  
स्वभाव हा धर्म है । परिप्रदसे दूर रहनेकी भावना रखना त्याग है । उस  
होनेपर परोपाधिया का याग हा जान में उस ज्ञान स्वभाव की  
ही साधित होती है और वह शुद्ध ज्ञान मात्र आत्मा का स्वभाव

अथ गीतया शुद्धतैवावसीयते न च शुद्धा ज्ञानमात्रा भाव आत्म  
 न स्वभावस्तत मिद एवात्मस्वभावो धर्म । तथैव च मानमा-  
 यालामात्मन्यासयमेव निरोधलक्षणेषूत्तममादवाऽवशौचसयमत-  
 १५२ पु मत्स्याधिष्ठापितेस्तस्य ज्ञानभावस्य शुद्धतैवावसीयते  
 स च शुद्धा ज्ञानमात्रा भाव आत्मन स्वभावस्तत मिद एवा-  
 त्मस्वभावो धर्म । तथा च पतिग्रहा व्यावृत्तिपरिणामस्त्यागभूत-  
 स्मिन्परिणामोऽप्युपाधिः व्यावृत्तस्तस्य ज्ञानभावस्य शुद्धतैवावसी-  
 यत न च ज्ञानमात्रा भाव आत्मन स्वभावस्तत मिद एवात्म-  
 स्वभावो धर्म । तथा हि श्रुत्येऽपि ममान्यद्विद्वन्नापि नास्तीति

है इस कारण यह सिद्ध हुआ कि आत्मस्वभावका नाम धर्म है । तथा  
 इस ससारम मेरा कुछ भी नहीं है, इस प्रकारक ममताभावरूप  
 आर्क्षिक धर्मक हानपर परपदार्थोंके सम्पर्कका अभाव होनेम ज्ञान  
 की शुद्धता ही जाती है इससे भी यही सिद्ध हुआ कि आत्मस्वभाव ही  
 धर्म है । मन्वा ज्ञान-दमय शुद्ध निज स्वभावम रमणरूप ब्रह्मचर्यके  
 होनपर नतन्मन्वा की अंतर समस्त दोषों के निरान्त दूर होजाँनेसे आत्मा  
 निजस्वरूप- । वा । शुद्ध करना है प्राप्त होना है, इससे भी यही परिणाम  
 निकला कि आत्मास्वभावका नाम ही धर्म है । हे आत्मन आत्मस्वभाव  
 निश्चय ही किसी दूसरेकी सहायतासे प्राप्त नहीं किया जाता है क्योंकि  
 जो जिसका स्व [अपना] है उसका स्वामी वही होता है ऐसा मन्त्रे  
 प्रकार सिद्ध है । निश्चय धर्म का साधन मात्र व्यवहार धर्म, यदि आत्म  
 स्वभावक अज्ञा य ज्ञान आचरणम आत्माकी ही अज्ञान परिणामिक

परिणा परव्यावृत्तज्ञानस्य शुद्धतैयति मिद आत्मस्वभावाधो  
धर्मः । तथा प्रलयवदपि यदा मिलात्मा द्रष्टाणि आत्मनि  
शुद्धे ज्ञायकभावे चरति तदाऽयदोपात्यन्तं गीभृतत्वात् स्वात्म-  
स्वभावेन साधितवानिति तत्रापि मिद आत्मस्वभावाधो धर्मः ।  
ह आत्मन् ? आत्मस्वभावाधो हि नान्यस्मादर्थान्निर्भयत यो हि  
यस्य स्वः स एव तस्य म्यामीति सुप्रनिर्दृष्टत्वात् । नश्ययर्ममाध  
ननिमित्तमात्रा हि व्यवहारधर्मा यद्यात्मस्वभावश्च द्वाभेदज्ञानाचरणे  
प्यात्मन एवाज्ञानराशतिमद्भावेन । नमित्त न भवति किं धम  
मज्ञानमुपचरितत्वेनापि न लभते तत फल व्यवहारधम एव मा

कारण निमित्त नही हो ना वह उपकारम ना धर्म मज्ञाना नही प्राप्त  
कर सकता ।

इस लिय केवल व्यवहार धर्ममें ही मत मिल । अपने ज्ञानके  
आधरोधक रागद्वेषको त्याग करता हुआ ही सन्ताप मान । जब समस्त  
परंपदार्थोंमें अनुराग बुद्धिका छोड़ आत्ममात्रका प्रयुग्म करे । तभी  
मुक्तिका समीपवर्ती तू बन सकता । पुण्यविषयक राग छाड़ना चाहिए  
क्याकि सासारिक नानाप्रकारके सुख पैभक्की प्राप्त रूप पुण्यफल  
को किसीने चाहा तो उसने संसार ही मंगा है २० । यत्र मिद ह । फिर  
पुण्यानुरागका अर्थ होता है वैभवाकी अभिलाषा और अभिलाषाका  
दूसरा नाम है साम्रकषाय, तथा साम्रकषायका सन्ताप पुण्यबंध  
होता नही ।

इस प्रकार पुण्यराग वा अभीष्ट पूरा दाता न हो स अत्यंत हेय  
समझना चाहिए, तथा संसार का कारण ज्ञान र पावन र छ मज्ञान इसे

दुःखस्य ज्ञानविच्छेदमूलौ रागद्वेपो व्यावर्तयन्नेव सतोप मन्यस्य ।  
 यदि सर्वेष्वर्थेषु रागबुद्धिं निहाय स्वात्मानमेवानुमविष्यसि  
 तदैशमक्रमुत्तिष्ठो भविष्यसि । रागः क्लिष्ट पुण्येऽपि वर्जनीयो  
 वर्तत यता हि पुण्यफलं मानारिह्यैमवाप्तिः । यदि केनचित्पु-  
 ण्यं याचितं समाप्तं एव याचितं मिदं । किञ्च पुण्यरागः क्लिष्ट  
 वैमव इच्छा, सच तीव्ररूपाय, तीव्ररूपाये च पुण्यबधोऽपि न  
 भवति । इति पुण्यरागं यं स्वार्थव्याप्ताकारित्यामात्रादत्यन्तहेयत्वं  
 संसारप्रयोजकत्वाच्च पापबधस्यैव पुण्यप्रधस्याप्यनिष्टत्वं च ।  
 ततः परमात्मनो धीतरागतागुणेऽनुरागं त्रिधेहि । म एव शरणम् ।

भी अनिष्टकारी, बुझा करने वाला मानना चाहिये । इस नियम परमात्मा  
 धीतरागता स्वरूप गुणम अनुराग कर । वही शरण है । धीतरागतामें  
 अनुराग करनेवालेके मारागताका तोय नहीं आता क्योंकि वह धीत  
 रागताकलिये है [ मनारकेलिये नहीं ] धीतरागताको बढ़ाने वाला  
 है । स्वयं हा धीतराग दशा का प्राप्त हुए महात्माका ही मनुष्यमशकी  
 सफलता इसी धीतरागताके प्राप्त करनेपर है अन्यथा, रूप रस, गंध  
 स्वरा शब्द पर्यायात्मक पुद्गलों का उपभोग वा पशुआफ भी धार धार  
 निरन्तर दृष्टा करता है । उस लिये है आत्मन् । धर्मभय निज स्वभाव  
 में अथवा निज स्वभावरूप धर्मम रमण करनेकेलिये कमर कस ले ।  
 इस संसारम तूज स्वयंघन धान्य आदि सम्पदा बुद्धि बल से प्राप्त सम्मान  
 पद प्रणिष्टा, तथा इतर भौतिक सुखसामग्री धार धार प्राप्त की है किन्तु  
 सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र रूप व धि भेद विज्ञानमयी भावना से उत्पन्न जो  
 धीराग्यातकव उससे पैदा हुई राग द्वेष की नदता तबजान्य समाधि, संसार

न हि विरागानुरागस्य रागत्वमाद्यत तस्य विरागत्वप्रयोनर  
त्वात् विरागत्वसंबद्धकृतात् स्वरसतः एव विरागाशयन परिण  
तस्य महात्मन एव विरागानुरागस्योत्पद्यमानत्वात् । मनुष्यस्य  
स्रैतस्मिन् क्रियमाण एव सकलता । स्वशरणाधर्यगन्दमोग  
स्तु पशुनामपि वरीयते । अतः मो आत्मन् धर्मय ब्रह्ममावे  
ब्रह्मस्वभावमये धर्मे रन्तु बद्धकसो भव । जगति किल सुरर्णधन-  
धान्यादिसपदः शेषमुपकलालन्धप्रतिष्ठा पार्थिकमपदरच मुदुर्मुहः  
प्राप्य, गिन्तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारिप्ररत्ननयात्मकयोधिर्भेदद्विज्ञान  
भावनासमुत्थवैराग्यप्ररूपममुद्गतरागद्वेषमान्धमूला समाधिर्भर-

मूलक शुभाशुभ परिणामोंके निरोधक उत्तम दुइ परिणामशुद्धि, और  
टकातीये शुद्ध ज्ञायक स्वभाव मयी परिणति रूप आत्मोत्थानि कभी  
भी नहीं प्राप्त की, इस लिये मोक्ष सुरूप तुनेमम्पत्ति के सिद्ध करने  
पाती याधि का ही तुलना है विषयवासनाधर्य सुगमाधना का नी।  
इसलिये सम्यग्दर्शन आचारि म विरत्नर प्रयत्न करना हुआ मिथ्य दर्शन  
ज्ञानचारित्र्येण रागद्वेषमोहलक्षण संसारके ज्ञानके लिये, कमर  
कम के नैयार होआ । आत्मरभाव रूपधर्मके प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न  
शील होता हुआ शरीरका, हानिकारक प्रयागोंस आत्माकी हानि क्या  
मानता है । आत्माका अतित निश्चयमे विशुद्धिवा हास होनपर  
होता है । पर यह निश्चित है कि शरीर और आत्मा द्वितुल्य, विपरीत  
गुणधर्म धारि हैं इस लिये जो क्रिया जीवक लिये हिनकारी है वह शरीर  
को नुकसान पहुचाना वाली है और जो शरीरका हितकारी है वह  
आत्म के त्रुल्लाहोर्त है । 'यद्यपि सुदृष्टि रे यद्ग्याप्ति दुपित भी

इतरजगत्प्राप्तुं परिणामनिरोधना परिणामशुद्धिप्रेतभीष्टं दु-  
 ज्ञायस्वभावमयपरिणामं तत्पदाभ्योपलब्धिः कदाचिदपि न लब्धे-  
 ति शिरमौख्यात्तुल्यमप्युक्तमाधिराया बोधरज दुर्लभत्वं नैष्य  
 कमुच्यमाधनानामतः मद्दृष्टिगोचररूपेषु भूतत यतमानो  
 मिथ्यादृग्ब्रह्ममन्त्रेण ललाटद्वयमादृत्य जगज्जेतुं यद्वद्वदो-  
 भयाः । तथा प्रयतमानो दृढापकारकमप्रयागे कथं स्वात्मनानि  
 मन्यमे । आत्मनो हानिं क्लृप्तं विशुद्धिदानावास्ते । अपरैश्चैत-  
 न्निश्चितं जानीहि यज्जायस्यापकारकं समन्वितं दुर्देहस्यापकार-  
 कम्, यच्च वपुष्वपकारकं तज्जनीयस्यापकारकम् । यद्यपि सूक्ष्म-

हो तो भी कषाय से भरन विषयके त्यागनेमें भयभीत प्राणी के लिये ह-  
 व्याप्ति हितका संपादन करने वाला है ही अन कामवत्प्राणः  
 चाहने वाले जिज्ञासु मुमुक्षु जना का वक्ष्य गांधारः  
 भोजनका करना आदि विषयोंमें चित्तका हठार गुप्ति  
 समिति धर्म, अनुपेक्षा, परावृत्तियोंमें तथा निजस्वरूपका अवलोकन  
 करने एवं सिद्ध त्मस्वरूपका चित्तन वरन्म अपनी बुद्धिवाचक  
 ये लुभा लुपा आदि तरे स्वभाव नहीं हैं आपितु मोक्षनीय कमकी महाधना  
 से वन पाय हुए अमातावेदन यत्र व्यस पैदा हुई व्याधिया ही हैं  
 भोजन पान आदिको कुछ भर के लिये उपशमन कर देनेक उपाय 'मौत्र'  
 हैं । आत्मधनके प्रगट न होनपर ही ये भूयःप्याम आदि की इच्छा ये  
 व्याकुलता पैदा कर सकती हैं । दसो, एक दो तीन चार मास तक उपवास  
 धारण करने वाले नरभव को रतनत्रय प्राप्ति का साक्षात्कार म नने वाले में  
 कषायमान हो, उपेक्षा पूरा आधारचर्य करन वाले,

दृष्ट्या व्याप्तिरिय दूषताऽपि यत्तथापि कृपायकालीकृपाय  
 त्रिषयानुजिक्तु निश्चयते प्राणिने व्याप्तिर्हितमवादिर्नैपति धृष्य  
 रमन्मात्रप्रभृतत्रिषयेभ्यश्चेत्ता व्यापत्ता गुप्तिमितिधम नुप्रेक्षा  
 परापहजयेषु स्वात्मस्वरूपावलोकन मद्वात्मस्वरूपाविवन्तने च  
 जेमुषीं मशक्ता विधेहि । न ह्येत क्षुद्रादयस्तर स्वरूपमिद्वा  
 एत स्मिन् मोक्षोदयमाहात्म्यात्तौदयदरे नामद्वयोदयन जाय  
 माना व्याधय एव नाननादयश्च क्षणावगमनायधानम्यथाया,  
 एव मन्त्रपरमणीया । आत्मप्रलाभिव्यञ्जनाभावा एवैते व्या-  
 कुलत्रमुत्पादयितु शक्नुवन्ति । साधूना किल विद्विषैक द्वित्रि

के उदय में कुछकृन्ति, मान प्रयत्न आहार प्राप्त नहीं कर सकनेमें मास  
 रक्तान्तिके अभावम हृदिया तथा मिराओं (नसा) के समूह रूप शरीर  
 धारण करने वाले साधुआके आत्ममात्रनाम अचि नश्यतिगा (अद्या)  
 होने में त्रिपात् या क्लेश तो दूर रहा "लगा थाई अवगुनीय अमाधारण  
 आन इसा उदय होना है । तथा यह उत्तर तर बढ़ता रहता है । कर्मोदय  
 के निक्षमिमे पैदा हुए भूत व्यासार्त्तिक अनुभव आत्मस्वभावके समस्त  
 प्रतीत होनेवाले विकार हैं और अपन निमित्तभूतकर्मकी निर्णयता जानस  
 एक बार भी नाश हो जानपर हमेशा कलिय दूर हो जाते हैं । परमात्मा की  
 यही तो परमात्मता (प्रकृति) है कि शुद्ध आत्माम अत्यन्त निर्दोषता के  
 आचानपर रागद्वेष मोहान्ति पापोंका मयथा अभाव हो जानस क्लेशको पैदा  
 करने वाले औदयिक भूत व्यासादि पापाय फिर कभी भी पैदा नहीं हो  
 पायी । "मी लिय कम रूप आवरणके कभी धरण नाश हो जान स उसकी  
 भव भविषान् शर्ममान सस्व की अतपयाया सहित अखिल विश्व की

[illegible]

एक साथ जानना हुआ भी आत्मानन्द स्व में हुआ हुआ यं परमात्मा,  
साधु समूह का ध्येय (आराध्य ध्यान करने योग्य) होता है । और स्मरण  
या ध्यान करनेवाले व मातृ भा उभोक्त समाप्त यत्न हैं । इन  
बल्याण कारण परमात्माका स्मरण ध्यान नयान्न हो । निमित्त प्रमाण  
से भवितव्य अनेक अविनाशी सुखसम्पन्न साक्षी सन्निहित हुए हों  
राखने वाले ग्राहणी शिरादा को भक्तिरूपी कुल या घड़े से जोड़कर  
निजस्वरूपार्थि रूप साक्षी म निर्वास करते हुए निगतर निश्चिन्त  
स्वाम्यात्मिक सुखा भोगते हैं । यह सुगायाति, माद्यक विषय सम्पूर्ण  
मोक्ष रतनत्रयके बिना नहीं मिलता, रतनत्रय सिद्ध होने के बाद ही  
मन की स्थिरताक पैदा नहीं हो सकती और सर्वज्ञ ज्ञान हुआ  
विषयक रागद्वेषात्मक परिणामाका अभ्यास ही होगा है । जो एक  
रागद्वेषका अभ्यास करके क लिय लौट तब तक अपने ही हृदय में  
उत्तकी स्थिरता धैर्य को नाश करने वाला होता है



मन्त्रावत्त्वन रागद्वयमन्त्रोपगतानु लब्धेः कदाचिदप्युत्पन्न  
 नाहन्ति । तत एव चारणनयाद्विरमिष्वपर्याय युक्तानाम  
 निजानन्दरममग्न मन्त्रमाधुसदोहैः सस्मर्यत, स्मरत उग्राम  
 मानास्त तादृशा भवन्ति । इत जयतु जयतु सतत कल्याणमय  
 परमेश्वराभुम्भरणम् यत्र गदाभिराघिणमनिर्भगमृत्तिमादराव  
 रोधमाहकपाटी भक्तिबुद्धिः योद्धाव्य भव्यजनाः स्वस्वस्वावा  
 प्तिमयमाद्ये । नवमन्तोऽनररत शाश्वत माहावकमनुपम सुखमनु  
 भवन्ति । तत्किञ्च न मन्त्रान्, म च नान्तरा रत्नत्रयम् तच्च । न  
 विना ध्यानं तच्च न विना मनस्थैव भवितुमर्हात मन । स्यैवञ्चेष्ट-

चोतन म इसका पुण्याय सफल न हो जाय । इसलिय हे आत्मन् परापूर्वों  
 के ध्यानपर क्या हरता ह । भयबुद्धम प्रयत्न कर इन शत्रुओंको जीतकर  
 परनिमित्त मे पदा होनवालो कतुपनाम रहित नित्य, स्वाधीन ज्ञान  
 साम्राज्यक सुखको भोग । इन कर्म शत्रुओंके मूलोच्छेदन करनेम तभी  
 आत्मास किमी प्रकारकी दुबलता भी क्या नहीं है । तर भी इतनी  
 सतन्त्र शक्ति है कि चिनक इस शक्तिकी व्यक्ति हो गई है और जो उस  
 को पूर्णतया अनुभव करत दृष्ट भी कल परभीतम उसकी गणना करने म  
 या वर्णन करने म क्षम नहीं है क्योंकि यदि उसका पूर्णतया वर्णन या  
 गणना करली जागा है तो उसकी अनन्तताका व्यापात होना है । अस्त  
 आराम म प्राप्त किता हुआ ज्ञान दुःख व परीपहके वपस्थित होने पर  
 नष्ट हो सकना है इस लिय मूढ आत्माओंके द्वारा माने गय दुःखा म  
 अभ्यासी ज्ञानी आने की संयुक्त कर अध्यान् कायकलशनामक तप बहि  
 बुद्धि वाले बहिरात्मा जाधो क द्वारा कल्पित सुख, दुःख, कल्पना मात्र

नित्यपरतिपरिणामनिरहाद्भवति त च विधातु तानश्चम\*  
 पुरुषो यावत्स्यैयधैर्यविध्यमनप्रवणविविधपरीपहाणां विजयेऽस्-  
 याविफल. पुरपकारो न भ्यात् । अतो मो आत्मन् कथ विभेपी  
 परीपहोयनिपाते भावगङ्गे प्रोद्यम्य इमान् शत्रून् विजित्य शाश्व-  
 तिक परापाघजकल्मपताविविक्त स्वार्थो न ज्ञानसाम्राज्यमनुभव ।  
 एषां मूलतो मन्यने न तव कापि न्यूनता । त्वयीयती शक्तिर्यद्वै-  
 शद्येन गणनया वर्णयितु व्यक्ततच्छक्तिकोऽपि ता पूर्णतयाऽनुभव  
 नपि न क्षम , वर्णने तस्या अनन्तत्वस्यावातप्रसङ्गात् । अदु ख-  
 समुद्भोति ज्ञान दु खे समुपस्थिते विनश्यति तस्मादात्मान  
 मूढात्मभिर्मतैर्दुःखैर्भविष्येत् सयोजयेत् । बहर्धीभिर्मत सुख दुःख

ही है। क्योंकि यदि ऐसा पूछा जायता सुना आकुलता का नाम दुख है।  
 वह आकुलता वाक्य पदार्थों में आत्मा या आत्मीयसुख रखने वाले लोगों  
 को परपदार्थों व अर्थ-रक्षण और नारा हानि म मन स्तन्त्रि म अभाव से  
 मा परपदार्थों की स्वेच्छानुकूल परणतिन होने स होती है। ज्ञानी पुरुष  
 के इसमें क्या आया गया क्योंकि वह तो निज से भिन्न परपदार्थों में आत्म  
 या समत्व सुख रखता नहीं। इसी प्रकार यह वस्तुओं में स्वात्मत्म अथवा  
 स्वात्मीय सुख रखने वाले लोगों के कदाचित् अपने पुरुषोदय की प्राप्ति  
 होने पर परपदार्थों की अपने शरीर के सनाप हरणादि रूप जो स्वेच्छा  
 नुकूल परणति होती है उसे सुख माना गया है। किंतु यही भी ज्ञानी  
 पुरुष को क्या मिला या गया। यही भी निज से भिन्न परपदार्थों में उसकी  
 आत्म या आत्मीय कल्पन नहीं होती। ज्ञानी जीवों के स्वरति आदि  
 भाव के सम्पर्क से रहित स्वात्म संवेदन में सन्तोष होता है और रागद्वेष

कलनारनितरुलमेव । इत इतिरेदुच्यत-५      द्वि किन्नाचुन्य  
तद्वि रतिर्द्रव्येषु स्वात्मानात्मीयत्व वा म यवाना तप मारम्भे  
रक्त शे प्रियागे परमायत्वन मनस्तुष्ट्यभागात् स्व-द्रातुक्रन परि  
णत्यभागात् कुपु भिमत्र नानि यारनित म्यात् सागिरिक्तभात  
द्रव्येषु स्वात्मबुद्धेरात्मीयत्व बुद्धेशवाना गात् । सुख रापि बर्द्ध-  
रथेषु स्वामानगात्म यत्न मन्यमानाना ज तूना रडाचित् रदिर-  
र्याणा स्वपुण्योदयान्वाप्नो परमायत्वेऽपि स्वर्क गन्वाध्यामत्वन  
कायनिमित्त म ॥ पहरत्वात् म्यातिरमत्र ज्ञानिन्यापतित म्यात्स्ववि  
विवतमाद्रव्ययेषु स्वात्मबुद्धेरात्मीयत्व चेन्नाभागात् । ज्ञानिर्ना  
विल रस्यरतिभावास्पृष्टार्थविबेधन ते प समुत्पद्यते रत्यावि-

या प्रीति अज्ञान रूप व विषयत पत्नयोः र वत्त म नोप या शेष देश  
होती है । घाह्य रूप म बुद्ध भी करत हुए ज्ञाना पुण्या की अन्तरंग म गद्दी  
भावना रहता है कि प्रगट रूप म बुद्ध भा करत हुए मरी अ नरग आत्मा  
म प-यात्मक गा विपरीत श्रद्धान ज्ञान पत्ता हो जाय । चारित्र माहनीय  
के निमित्त उद्य होने धाले रागद्वेषात्मक परमाणु म = १ महान् सहाय  
होता है और प्ररक्ति भावना भी उत्तरोत्तर पुष्ट होती जाती है । यः कारण  
है कि ज्ञानिया के विषय मेघन हो पर भी मिध्यात्व र क नपु मक,  
असंप्राप्तास्त्वान्निवा, अर्वाद्रिय, स्थावर, आताप, सद्ग, र गारण अपय  
जि द्वारिद्रिय त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, गरकापु, नरकगति गत्या री, अनन्ता  
नुबधी माध मान, माया, लोभ निद्रानिद्रा, मचलाप्रचन्ना स्त्यानगृद्धि,  
दुर्भंग, दु स्वर, अनादय, यन्ननाराच नाराच, अधनाराच लकसंहनन,  
न्यमोध परिमंडल, स्वाति, याभन, दु-जक संधान, दृगम- तीचगोत्र

मात्रमसतायारोवने च ऐष. समुत्पद्यते । हिश्च किञ्चिदपि  
 कुवशान्तपामप एतैना व्ययमायो यत्किञ्चदपि कुर्वतो मे विर  
 रीताभिनिवरास्तन च महिता प्रवृत्तिमा भवत् । चारित्रमाहर्-  
 चवशनायमायेऽ रत्यरतिपारणाम्पु महास्तापा भवति  
 । गगुदाद्वरपुत्कृष्टा चायत । एतद्व कारण यद्विषयाभागापि-  
 ज्ञानिना । मध्यत्वदुष्टरपडामप्राप्तकृतावस्थावरातापवृत्तताधा-  
 रणापर्याप्तद्वित्रिचतुरिा द्रयनरकापुगत्यानुपूर्व्यान्तानुवन्धिबोध  
 मानमायालाभनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिदुर्भगदुस्तराना  
 देयमन्ननाराचनारावादनाराचनीलकमहननन्यग्राधपरिमडल-  
 स्वातिनामनदृजकमस्थानदुगमनस्त्रीनीचैर्गात्रितिर्यग्गतिगत्यानुपू-

तियगानि, तिर्यगत्यानुपूर्वी, तियगायु इन ४<sup>१</sup> प्रकृतिया का ध्वन  
 नही होता । उस में यह निश्चिद् हुआ कि रागरजिमा स रहित ज्ञान ध्वनका  
 हनु नही होना प्रत्युत भा सर्व प्रधान कारण सवर और निचरा का निमित्त  
 बनता है । उस लिये उपयुक्त ज्ञान प्राप्त करनेवाला समान पुण्यको  
 निमित्तरूप-रूप तन म गहन जन्य ज्ञानादि गुण पररूप परमब्रह्म हवन कर  
 सम्पूर्ण बाह्य पदार्थों में प्रवृत्ति का अभ्यास ज्ञान में अपने अव्यय पुनर्वाच्य  
 को कर । उस प्रकार व प्रयास काल में उपस्थित हुए परीषदों को जीतन में  
 नत्साही होता हुआ अपनेको इस लिये धन्यमान कि मुक्ति कन्या स  
 विवाह करने का भिला है सुखधर्म जिसमें उस इस मनुष्यमय में मुक्ति  
 के लिये श्रम करते हुए मेरी परीक्षा का समय आगया है । नि सन्देह मैं  
 आज इस कठिन परीक्षाको पास कर अनारि काल में बचे हुए धर्म शत्रुओं  
 को नाराकर निराकुल समय अधिनाशा युद्ध का अनुभव करूंगा, उस

व्याधिपापामेकवत्त्वविगत्प्रकृतीनां बन्धा न भवति ततः भिद-  
रागकृष्णपतावर्जितं ज्ञानं न रन्वदंतु\* प्रत्युत परस्मिन्पराभिधेयी  
माक्षोपाया विदधानि । अतस्तादृजज्ञानमप्यदन मयमपि एव  
निर्विकल्पस्यात्मात्यज्ञानादिगुणान्परमद्वेषिण्युत्तया सख्यमद्वि-  
रर्थप्रवृत्तिव्यावृत्त्या स्वपुरुषस्वरममाधाय रघेहि । तथा प्रयत्न-  
समुपपत्तितानां परीषदाणां विजयं मोत्माहो धन्य मन्यमानश्च  
प्रभवतात् यन्मुक्तिकन्याकरग्रहणावमरऽस्मिन्भव मुक्त्यै प्रय-  
तमानस्य मम पराक्षाकाल आयातः । नूनमद्येमां परीक्षां मुक्तीर्या-  
नादिसबद्धकुमारीन् हत्वाऽव्ययं सुखमनाह्वयमनुभविष्यामि ।  
अथैतया रीत्या परीषद्विजये प्रयतमानः पश्नान्निर्विकल्प एव

प्राप्त करूंगा । अथवा इस तरह परीषदों को जीतने में प्रयत्न करना हुआ  
मैं ममत्त विह्वल जाल में गड़ित उस आशा को प्राप्त करूंगा । जहां ध्यय  
[ ध्यान करने योग्य ] और ध्याता [ ध्यान करने वाले ] का भेद नहीं रह  
जाता अर्थात् यह आत्माही ध्यय एवं ध्याता हो जायगा । ऐसा होने पर  
अभाष्ट जो मोक्ष है वह निर्बाध रूप से क्षण भरम ही सिद्ध होजायगा ।  
इस तरह यह भला भाती सिद्ध होयगा कि चारित्र के बिना मुक्ति नहीं  
हो सकता । एवं वीर, धैर्यवान् पुरुषों द्वारा धारण किया जाने योग्य  
चारित्र के प्रारम्भम भगवानकी भक्ति महान् उत्साह प्रदान करती है ।  
तथा "म उत्साह को क्षीण करने वाले मौढवीय कम के परद को फाड़ने  
में आचिन्त्य महात्म्य रखने वाला और मोक्ष का साक्षात् साधन निष्ठा-  
त्मस्वरूप में रक्षण करता है । जो अपने आपमें भग्न होनेकी मागर्थ्य  
रखता है वही मोक्ष सुख का प्राप्त करता है । आत्माज्ञानके अभाव में

भ्यात्तःऽऽत्तैव ध्येया । तऽऽप्यात्मैव भ्यात् । तथा सकल-  
 मभाष्टमविन्नतः क्षण एव । मद्भवति । नूनं मिदमेतत् नर्ते चरि-  
 शमिदं भगवद्भक्तिर्हि व रोचितचारित्राभ्ये समुत्साहिका  
 तदुत्साहारगोधरमोहपटलभेदनामधारणप्रभाया माक्षासुप्ति  
 माघनश्च स्वरूपमभावेजनम् । यः स्वरूप समावेशाधिकारी स एव  
 शिवमौर्य लभते केवल परमेष्ठिनो गुणान्  
 गायन्नोऽधेकनाधिप स्पर्शस्व लभेन् यथा  
 किं कागदिच्छन्नयस्य विवाहाप्रसरे रत्ननादता वा य  
 निग्न गान् कर्तव्यन्त तां केवल उत्तम धारिण्यो न किं रथ-  
 चिटपि बहुस्वामित्वसुखं लब्धुमर्हति, माता च तथाऽऽदभ्यर

केवलपरमेष्ठी का गुण गान करने वाले अधिकसे अधिक भगवत्पुत्रों  
 प्राप्त कर लेंगे । जिस प्रकार किमाक पुत्रके विषय हाथभर पर जुलाई  
 गर्भस्थिया [ठालनी या मातनी] अनेक प्रकार माल गान हामयिल स  
 करती हुं केवल पनापा की हस्तार होनी हैं किमा भी तर पर जीत  
 गवधू क स्त्रामित्य अन्य सुख का प्राप्त नहीं कर गयी । उता अधि  
 कारनी गयनात्तिक आत्तर को नहीं करने वाली पुत्र की माना सो ही  
 जाना है । उसी तरह मोक्षमुद्यानुभय का सहन अधिकार आत्मात्मन् पुरुष  
 को ही होता है । वमका आशय यहा परमेष्ठियों के गुणानुयाय का निषध  
 करना विलकुल नहीं है । यह ना स्वरूप समाधि क पूर्व अभ्यास दशा म  
 निनात आशयक है ही किन्तु वम गुणानुयाय का फलस्वरूप लीनता ही  
 है यही ध्यय होना चाहिये ।

व्यापुपापामकृत्त्वर्गितप्रकृतीना बन्धा न भवति ततः सिद्ध  
 रागस्त्वपतामर्जित ज्ञान न यन्वहेतु प्रत्युत तत्परानर्तराभिधयो  
 माक्षोपाया विदधानि । अतस्तादृज्ज्ञानमप्यदन मयमपि पुरय  
 निर्विकल्पस्वात्मान्यज्ञानादिगुणपरमत्रह्याणि ह्रुत्वा मरुलपट्टि  
 र्यप्रवृत्तिव्यावृत्त्या स्वरूपपरममाध त्रयधर्म् । तथा प्रयत्न  
 समुपपत्तिताना परीपद्वाणा विनये मोत्माहो ध य मन्यमानर  
 प्रमत्तात् यन्मुक्तिरन्याकरग्रहणापरमरश्मिहरभने मुवत्य प्रय  
 तमानस्य मम पराक्षाकाल आयात, । नूनमद्येमा परीक्षासुचीर्या  
 नादिममद्वरुमारीन् हन्याऽव्यय सुखमगाकृन्मयमनुभविष्यामि ।  
 अययैतया रीत्या परीपदविजये प्रयतमान परचान्निर्विकल्प एव

प्राप्त करूंगा । अथवा इस तरह परापदा को जीतने में प्रयत्न करता हुआ  
 मैं समस्त विकल्प जाल में गड़ित उस पशाका प्राप्त करूंगा । जहां ध्येय  
 [ ध्य न करने योग्य ] और ध्याता [ ध्यान करने वाले ] का भेद नहीं रह  
 जाता अथान् तद आत्माही ध्येय एवं ध्याता हो जायगा । ऐसा होने पर  
 अभाष्ट जो मोक्ष है वह निर्गोध रूप में क्षण भरमें ही सिद्ध होनायगा ।  
 इस तरह यह भली भांती सिद्ध होगया कि चारित्र के बिना मुक्ति नहीं  
 हो सकता । एवं वीर ध्यवान् पुरुषा द्वारा धारण किये जाने योग्य  
 चारित्रिके प्राप्तभूम भगवान्की भक्ति महान् -त्साह प्रदान करती है ।  
 तथा

को क्षण करने वाले मोहनीय कम के परद को फाड़ने  
 करण वाला और मोक्ष का साक्षात् साधन निष्ठा  
 करता है । जो भग्न होकर की साधन्य  
 मोक्ष सुख को ज्ञानके अभाव में

मृगशृङ्गाऽऽत्मैव ध्येयाः सातः ॥ १ ॥  
 महात्मविन्नतं चण्डपरा। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं।  
 शर्मिष्ठं भगवद्भक्तिर्हि वरं। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं।  
 नृणां ह्यवगोघरमो ह्यपटलमेकः। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं।  
 साधनश्च स्वरूपमभावेनानु। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं।  
 शिवमौगं तमते। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं।  
 गायत्रोऽधिरुर्नाधिरु। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं।  
 त्रिंशत् शान्तिं नयस्य। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं।  
 निष्प्रशान्तं वर्तन्त ता। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं।  
 चिदपि बहूरात्मितदसुखं। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं। सुदृष्टं।

अनशनं प्रत निधाय  
 उत्काचप्रभति निपय-  
 गिणामपरिणम्यपि  
 प्टानिष्टुद्धि मत्यज्य  
 नमाम्यमुग्रारम पातु  
 नरतस्य महात्मनो  
 मात्मा धातिवर्माणि  
 च आत्मनो हित  
 तद्य सुखमात्मनः  
 पुन्य एव प्राप्तु

बेभलपरोपेष्टी का गुण गान करने वाले  
 शान्त कर लेंगे। निम प्रकार किमा  
 गन्धमिया [दासनी या मादनी] को  
 करनी हुई केवल बनामों की हक  
 तम्युक्त भ्यामितर अन्य सुख  
 कारण। अत्यन्त आदर को  
 होता है। उसी तरह मे  
 को ही होता है। इसका आशय यथा  
 करना बिलकुल नहीं है। वह तो  
 निताप्त आशय है ही किन्तु यम  
 है यही ध्यय होता चाहिए।

अपन २ मन्त्र-धन  
 हुण परिणामों मे  
 न यद्य दार्थों मे  
 ती प्रथा क सुखों  
 न का पान करने  
 न स प्रशक्त  
 है। यमी  
 जानमय  
 १ व  
 म  
 १ चतु  
 १ पाधार



करणमर्ह्यत्यरि तत्सुखं ल । न प्र ५२३१ ३१ ॥ ॥  
 निषिध्यत स तु स्वरूपमायणास्थायी प्राग्विज्ञानमावश्यक  
 एव पर तस्यफल स्वरूपमगवेश स ध्येया लभ्यरच । को हि  
 नाम युध फलमनाद्धर कन्तामुपवन मिश्रन् कष्टमव (निदधीत)  
 विदधात् । भो आत्मन् मनुजन्म दुर्लभम् तद्वापि शिवमीग्य  
 सत्कर जिनदय दुर्लभतमं सप्राप्य दोग्दु स्वादुबन्धिषु विषय  
 ध्वमिमुख बलादज्ञानीभूय स्वर्णविमर मुघा यावयाम । मनी दृष्ट  
 ममासादयता भोगेभ्यो रितस्य आत्मानुष्ठानान्ठतया न  
 काञ्चदपि क्लेश प्रन्दुत ५ मान्दो जायत एव । यथा कश्चि  
 द्दमफलमुग्धतयाऽनशनत्रत विधाय स्वकीया दृष्टि देहान्त प्रविष्टां

ऐसा कौन बुद्धिमान हागा न। फल चयन की इच्छा रखता हुआ  
 केवल धन की सींचता हुआ व्यय कष्ट उठाया। हे आत्मन् मनुष्य नम  
 पाना दुर्लभ है हममें भी शिष्य सुग ५२ न करने वाला जनधर्म ता अत्यन्त  
 दुर्लभ है । सा ऐस मनुष्य स म और जनधर्म २१ आतायास प्राप्त अनन  
 ५ दुखों का करने वाले । ययाम भूलपर विवश हो अज्ञानी हाना हुआ  
 ही इस सुखभावमर २१ स्वरदा है असार और भोगा म । वरत हृम  
 ॥ ५ ॥ मनीचन - ५६ प्राप्त करने में सत्पर आत्मसाधन  
 में ही परमात्र निष्ठा रखने वाल लावन किसी भी प्रकार का क्लेश नहीं  
 हाता अभितु मदान् अभूतयून आन आता है । जिस प्रकार कोई व्यक्ति  
 धमफलक लाभ म उपवास धारण कर अपनी भावनाको शरीरक विषय में  
 ही फसाकर व्यय हा आनशयस्वा म दुखों ह ना दे तो होओ किन्तु जो  
 उपवासवन की धारण कर समीचीन शुद्ध भावना का आश्रय लेकर एसी

ताव तैवित्तयन चेकिन्श ताम् हिन्तु योऽनशम प्रत विधाय  
 मती गति ममाग्रगति यद्य यन्वाऽ मैतायत्तानप्रमति विषय-  
 क्षान्त पृथग्भूय विषयकथाय हन्मपित्तगिणामपरिच्छिन्मपि  
 विषयान्त मन् उतै नस्मात् सर्वमदिरर्शेऽपिष्टानिष्टबुद्धि नत्यज्य  
 मगारिद्वयसुखविलक्षणमत्थाम अन्द्राम नमिमाभ्यसुधारम पातु  
 शरी । नूनमेतादृशी दृष्टिरनगतो विरतस्य महात्मनो  
 लोकोत्तरानन्दमुत्पादयति तैस्त्वेतैः दत्तेजसात्मा घातिप्रमाणि  
 द्वा ज्ञानरमिति-र-रुच्यमोति । तथा च आत्मनो हित  
 हि हितम्, आत्मा च स्वयं हितस्वभाव तच्च सुखमात्मन  
 वैकल्यादस्थायी, वैकल्या च चातुर्गतिकेषु मनुष्य एव प्राप्तु

मिला करता है कि मैं व्याज घ य हूँ जो आत तक अपने से मर्वा-घ न  
 विषयायोम प्रथम नो विषयवाआ से कतुविन हुए परिणामों मे  
 निर्येन कम प्रपत म रक्षित हुआ हैं । इस लिय समस्त उध गार्थो म  
 इष्टान्त्र बुद्धि का वित्त्वाग पर समार के समस्त सभी प्रकार के मर्गों  
 न विलक्षण चक्रवर्ती और दोन्नों को भी तुलभि समतामन रा पान करने  
 निय प्रयत्न करता ह । नि-कय हुआ मेरी दृष्टि अशन भोजन स प्रित्त  
 वनाम कान जाने मन्त्रमात्रे अलौकिक आनन्द प्रदान करती है । उसी  
 अन्त्रात्मक अपूर्व तेज आत्माचार घातिया कर्मों को नाश कर ज्ञानमय  
 हुआ हुआ त नों हों को म दाख हो जाता है । इस प्रकार आत्मा का  
 दिग दो मन्त्रा सुख है, आत्मा राय सुख मन्त्र है, उह हूँ आत्म  
 ५ वैकल्या ( वैकल्या नान गय म्शा ) से होता है - वैकल्याथा चतु  
 नि-कये जीवाम मनुष्य ही प्राप्त कर सकता है, मनुष्य शरीर आधार

ममर्थः, मनुष्यदहमाधश्चाहार\* अता यावतापनाहारण  
रत्नत्रयमाधनवाप्यायदनाववानचमताविधातो न स्यात्ता-२  
नोदर भुञ्जानस्य मे स्वरूपच्युतस्य स्वरूपायाप्तारचराय  
भवति। त दृष्टिमादधानाऽनाकुलमोग्यमागति ।

( अपूर्ण )

आपार आहार है, इस लिये जिनने थाड़े आहार से, रत्नत्रयप्राप्ति के हेतु  
भूत स्वाध्याय, धरना आदि। नित्य कर्मा की सामर्थ्य या विधान न हो तब  
आवश्यकता से कम [ भर पट नहीं ] आहार को धरत हुए स्वरूप से भ्र-  
मेरे चिरकालकालिय स्वरूप प्राप्ति हास्य, ऐसी भावना रखना हुआ ज  
आकुलता रहित मुखाका भागनवाला हाता है ।

( अपूर्ण )

\*स प्रकार अध्यात्मरूपाणा नायनीथ पूज्य श्री मनोहर जी के  
'श्रामरत्नहजान-२' सारान्व द्वा। धनप्रतिभा की अवस्था ।  
सन् १६५५ में विरचित दृष्टि नामक ग्रंथ अपूर्ण समाप्त हुआ ।



ओ म प्रिटिंग प्रेस, मेरठ ।

